इग्नू
जन–जन का
विश्वविद्यालय

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ

BSOC-133

समाजशास्त्रीय सिद्धांत

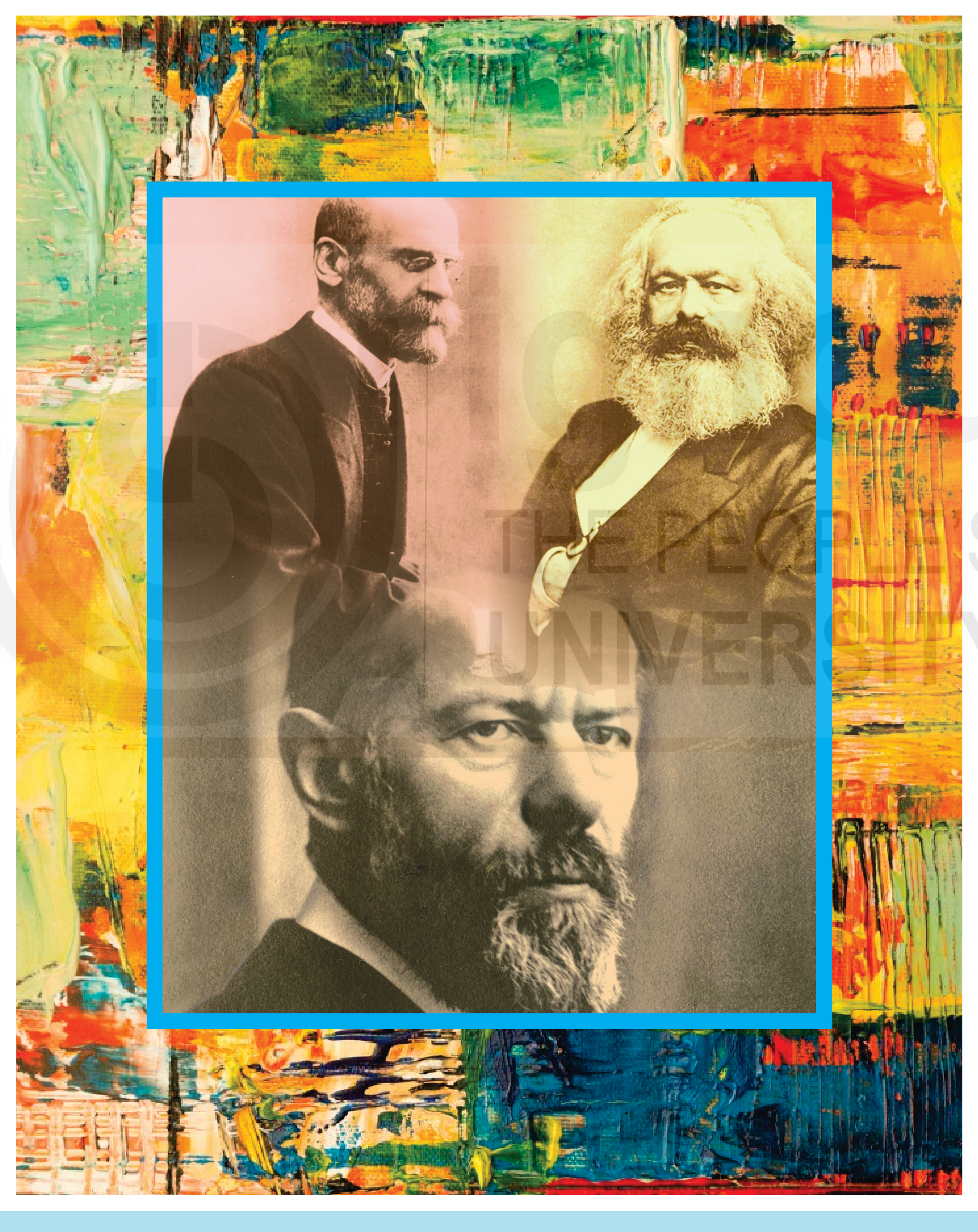

THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

"शिक्षा मानव को बन्धनों से मुक्त करती है और आज के युग में तो यह लोकतंत्र की भावना का आधार भी है। जन्म तथा अन्य कारणों से उत्पन्न जाति एवं वर्गगत विषमताओं को दूर करते हुए मनुष्य को इन सबसे ऊपर उठाती है।"

– इन्दिरा गांधी

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

"Education is a liberating force, and in our age it is also a democratising force, cutting across the barriers of caste and class, smoothing out inequalities imposed by birth and other circumstances."

- Indira Gandhi

इग्नू
जन-जन का
विश्वविद्यालय

इंदिरा गांधी
राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ

BSOC-133

समाजशास्त्रीय सिद्धान्त

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ
इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय

विशेषज्ञ समिति

प्रो. जे. के. पुंडीर,
समाजशास्त्र विभाग,
चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ।

प्रो. शरित भौमिक,
टाटा इन्स्ट्यूट ऑफ सोशल साइन्सस, मुम्बई

प्रो. एस. रॉय, नार्थ बंगाल यूनिवर्सिटी,
दार्जिलिंग, वेस्ट बंगाल।

प्रो. रोमा चैटर्जी,
समाजशास्त्र विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय

प्रो. सव्यसाची,
समाजशास्त्र विभाग,
जामिया मिलिया इस्लामिया, नई दिल्ली

डा. अभिजीत कुन्डु,
श्री वेंकटेश्वर कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

प्रो. देबल सिंह राय,
समाजशास्त्र संकाय, इग्नू, नई दिल्ली

प्रो. त्रिभुवन कपूर,
समाजशास्त्र संकाय, इग्नू, नई दिल्ली

प्रो. नीता माथुर,
समाजशास्त्र संकाय, इग्नू, नई दिल्ली

प्रो. रवीन्द्र कुमार,
समाजशास्त्र संकाय, इग्नू, नई दिल्ली

डा. अर्चना सिंह,
समाजशास्त्र संकाय, इग्नू, नई दिल्ली

डा. किरणमई भूशी,
समाजशास्त्र संकाय, इग्नू, नई दिल्ली

डा. आर वाशुम,
समाजशास्त्र संकाय, इग्नू, नई दिल्ली

पाठ्यक्रम संयोजक

प्रो. नीता माथुर, समाजशास्त्र संकाय, इग्नू, नई दिल्ली

पाठ्यसामग्री संपादक (इकाई 1,4,7 और 12)

प्रो. अविजीत पाठक, सीएसएसएस, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

हिन्दी अनुवाद : श्री कुमुद कुमार

पाठ्यक्रम निर्माण समिति

खंड	इकाई लेखक
खंड 1 कार्ल मार्क्स	
इकाई 1 कार्ल मार्क्स की कृतियों के दार्शनिक आधार	डॉ सुमित सौरभ श्रीवास्तव, सेंटर फॉर ग्लोबलाइजेशन एंड डिवेल्पमेंट स्टडीज, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
इकाई 2 द्वंद्वात्मक भौतिकवाद	इग्नू पाठ्यसामग्री से अंगीकृत : *समाजशास्त्रीय सिद्धान्त* : (ESO13) की इकाई 9 का प्रो. नीता माथुर द्वारा संशोधन
इकाई 3 वर्ग एवं वर्ग संघर्ष	इग्नू पाठ्यसामग्री से अंगीकृत : *समाजशास्त्रीय सिद्धान्त* : (ESO13) की इकाई 8 का प्रो. नीता माथुर द्वारा संशोधन
खंड 2 एमिल दर्खाइम	
इकाई 4 एमिल दर्खाइम की कृतियों के दार्शनिक आधार	डॉ. चारू साहनी, स्वतंत्र विदुषी, नई दिल्ली
इकाई 5 सामाजिक तथ्य	इग्नू पाठ्यसामग्री से अंगीकृत : *समाजशास्त्रीय सिद्धान्त* (ESO13) की इकाई 10 का प्रो. नीता माथुर द्वारा संशोधन
इकाई 6 एकात्मकता के प्रकार	इग्नू पाठ्यसामग्री से अंगीकृत : *समाजशास्त्रीय सिद्धान्त* (ESO13) की इकाई 13 का प्रो. नीता माथुर द्वारा संशोधन

खंड 3 मैक्स वेबर

इकाई 7 मैक्स वेबर की कृतियों के दार्शनिक आधार	डॉ. शुभांगी वैद्य, अंतर्विद्याश्रयी और बहु–विद्याश्रयी अध्ययन विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली
इकाई 8 सामाजिक क्रिया और आदर्श प्ररूप	इग्नू पाठ्यसामग्री से अंगीकृत : *समाजशास्त्रीय सिद्धान्त* (ESO13) की इकाई 14 एवं 16 का प्रो. नीता माथुर द्वारा संशोधन
इकाई 9 शक्ति व सत्ता	इग्नू पाठ्यसामग्री से अंगीकृत : *समाजशास्त्रीय सिद्धान्त* (ESO13) की इकाई 16 का प्रो. नीता माथुर द्वारा लघु संशोधन

खंड 4 कार्ल मार्क्स, एमिल दर्खाइम और मैक्स वेबर : तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य

इकाई 10 धर्म	इग्नू पाठ्यसामग्रीः *समाज और धर्म* (ESO15) की माइकल केनेडी द्वारा लिखित इकाई 10 और *समाजशास्त्रीय सिद्धांत* की इकाई 19 से प्रो. नीता माथुर द्वारा अनुकूलित
इकाई 11 आर्थिकी	इग्नू की पाठ्यसामग्री : *समाजशास्त्रीय सिद्धांत* (ESO13) की इकाई 20 एवं 21 से प्रो. नीता माथुर द्वारा अनुकूलित
इकाई 12 समाज, धर्म और एकात्मकता	प्रो. हरिबाबू (सेवा निवृत्त) समाजशास्त्र विभाग, हैदराबाद विश्वविद्यालय

शैक्षणिक सलाहकार : डॉ. वन्दना शर्मा और डॉ. विनोद कुमार यादव, समाजशास्त्र संकाय, इग्नू, नई दिल्ली

सचिवीय सहायक :
श्रीमती सोनिया पाल और श्री जोगिन्दर कुमार

हिन्दी अनुवाद का पुनः निरीक्षण (इकाई 1,4,7,12) :
श्रीमती निर्मल

कवर डिज़ाइन : सुश्री अरविन्दर चावला

मुद्रित सामग्री निर्माण

श्री तिलकराज
सहायक कुलसचिव (प्रकाशन)
इग्नू, एमपीडीडी, नई दिल्ली

श्री यशपाल
अनुभाग अधिकारी (प्रकाशन)
इग्नू, एमपीडीडी, नई दिल्ली

सितम्बर, 2020

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, 2020

ISBN : 978-93-89969-87-0

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस कार्य का कोई भी अंश इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना किसी भी रूप में मिमियोग्राफ (मुद्रण) अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रमों के विषय में और अधिक जानकारी विश्वविद्यालय के कार्यालय, मैदानगढ़ी, नई दिल्ली–110 068 और इग्नू की वेबसाइट www.ignou.ac.in से प्राप्त की जा सकती है।

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की ओर से कुल सचिव, सामग्री निर्माण एवं वितरण प्रभाग द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

मुद्रक : हाईटेक ग्राफिक्स, डी-4/3, ओखला इण्डस्ट्रियल एरिया, फेस-2, नई दिल्ली-110020

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

विषय सूची

		पृष्ठ संख्या
खंड 1	**कार्ल मार्क्स**	
इकाई 1	कार्ल मार्क्स की कृतियों के दार्शनिक आधार	11
इकाई 2	द्वंद्वात्मक भौतिकवाद	28
इकाई 3	वर्ग एवं वर्ग संघर्ष	40
खंड 2	**एमिल दर्खाइम**	
इकाई 4	एमिल दर्खाइम की कृतियों के दार्शनिक आधार	55
इकाई 5	सामाजिक तथ्य	71
इकाई 6	एकात्मकता के प्रकार	89
खंड 3	**मैक्स वेबर**	
इकाई 7	मैक्स वेबर की कृतियों के दार्शनिक आधार	101
इकाई 8	सामाजिक क्रिया और आदर्श प्ररूप	117
इकाई 9	शक्ति व सत्ता	131
खंड 4	**कार्ल मार्क्स, एमिल दर्खाइम और मैक्स वेबर : तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य**	
इकाई 10	धर्म	145
इकाई 11	आर्थिकी	159
इकाई 12	समाज, धर्म और एकात्मकता	181
शब्दावली		193
कुछ उपयोगी पुस्तकें		199

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

पाठ्यक्रम परिचय

आइए हम दो परस्पर संबंधित प्रश्नों के साथ शुरू करें: समाजशास्त्रीय सिद्धांत क्या है? और समाजशास्त्रीय सिद्धांत का उद्देश्य क्या है? समाजशास्त्रीय सिद्धांत विचारों का एक समूह है जो हमारे चारों ओर घटित क्रियाओं का विभिन्न संदर्भों में समझाने की कोशिश करता है। आप यह पूछना चाहेंगे कि क्या उदाहरणतः समाजशास्त्रीय सिद्धांत द्वारा कुछ लोगों के एक महंगी हीरे की अंगूठी का प्रदर्शन करने की प्रथा को समझा जा सकता है? थेरर्स्टीन वेब्लेन ने इस तरह के व्यवहार को संपन्न वर्ग के सिद्धांत के ढांचे में समझाया। इसका मतलब यह नहीं है कि प्रत्येक सामाजिक घटना के लिए केवल एक सिद्धांत है। तथ्य यह है कि एक एकल सिद्धांत कई घटनाओं को व्याख्या कर सकता है और एक घटना को कई सिद्धांतों द्वारा समझाया जा सकता है। आइए मार्क्स के पूंजीवाद के सिद्धांत का उदाहरण लें। इस सिद्धांत को अक्सर धर्म के रूप में वर्ग पर चर्चा में उपयोग किया जाता है। यह भी सच है कि एकल घटना को कई सिद्धांतों द्वारा समझाया जा सकता है। आइए हम श्रम विभाजन का उदाहरण लेते हैं, जिसे प्रकार्यवाद और पूंजीवाद के सिद्धांत द्वारा समझाया गया है। आप यह समझने में सक्षम होंगे कि कैसे सिद्धांत सामाजिक घटनाओं की व्याख्या करते हैं और विभिन्न सिद्धांतों का उपयोग करके एक सामाजिक घटना को कैसे समझाया जा सकता है?

समाजशास्त्रीय सिद्धांतों पर यह पाठ्यक्रम आपको तीन प्रमुख सिद्धांतकारों के मुख्य विचारों से परिचित कराएगा: कार्ल मार्क्स, एमिल दर्खाइम और मैक्स वेबर। इसके अतिरिक्त, यह आपके विचारों को प्रभावित करने वाली सामाजिक और राजनीतिक परिवेश को समझने में सक्षम करेगा। मार्क्स, दर्खाइम और वेबर की मुख्य बौद्धिक विषयों/चिंताओं में से एक औद्योगिक क्रांति के प्रभावों का था। उनका मुख्य रूप से श्रम विभाजन, उत्पादन, कानून और संपत्ति, धर्म और वर्ग के मुद्दों से सामना हुआ। आश्चर्य की बात नहीं है, इसलिए, उनके सिद्धांत इन मुद्दों की करीबी समझ से उपजी हैं।

इस पाठ्यक्रम के तीन उद्देश्य हैं: पहला, तीन सिद्धांतकारों के केंद्रीय विचारों पर चर्चा करना जिन्होंने समाजशास्त्र विषय की नींव रखीं; दूसरा, यह समझाने के लिए कि कैसे रोजमर्रा की जिंदगी में हमारे सामने आने वाली घटना को एक सैद्धांतिक दृष्टिकोण से समझाया जा सकता है; और तीसरा यह प्रदर्शित करने के लिए कि विभिन्न सैद्धांतिक दृष्टिकोणों का उपयोग करके एक ही घटना को कैसे समझाया जा सकता है। पाठ्यक्रम को चार खंडों में विभाजित किया गया है।

खंड 1 की तीन इकाईयाँ सामाजिक चिंतन में कार्ल मार्क्स के योगदान पर केंद्रित हैं। पहली इकाई उन प्रमुख मुद्दों पर केन्द्रित हैं जिन्होंने मार्क्स के सामाजिक वास्तविकता पर दृष्टिकोण को प्रभावित किया। आपको मार्क्स के निजी जीवन की झलक भी मिलेगी जिसने उनके बौद्धिक जीवन को प्रभावित किया। अगली इकाई सामाजिक परिवर्तन पर मार्क्स के विचारों पर चर्चा करती है। आप सीखेंगे कि सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया को समझने के लिए मार्क्स के द्वंद्वात्मक भौतिकवाद का विचार कैसे लागू होता है। अंतिम इकाई आपको मार्क्स की वर्ग की धारणा से परिचित कराती है। आप इस बात के बारे में जानेंगे कि किस आधार पर वर्ग का गठन होता है और क्यों वर्ग एक–दूसरे के साथ टकराव करते हैं।

खंड 2 में तीन इकाईयाँ हैं जो एमिल दर्खाइम के सामाजिक विचार के योगदान पर चर्चा करती हैं। पिछले खंड की तरह, यह खंड भी तीन इकाईयों में विभाजित है, जिसमें पहले

उन मुद्दों और चिंताओं के बारे में बताते हैं जिन्होंने सामाजिक वास्तविकता पर उनके दृष्टिकोण को प्रभावित किया। अगली इकाई समाज की समझ की दर्खाइमियन पद्धति को देखती है। उन्होंने कहा कि समाज को सामाजिक तथ्यों के संदर्भ में सबसे अच्छा समझा जा सकता है और सामाजिक तथ्यों को समझने के लिए नियमों का एक समूह दिया गया है। यह विशेष इकाई सामाजिक तथ्यों की अवधारणा और विशेषताओं की व्याख्या करती है और सामाजिक तथ्यों के अवलोकन के नियमों पर विचार–विमर्श करती है। अंतिम इकाई मौलिक प्रश्न पर प्रकाश डालती है : सामाजिक जीवन को कैसे नियंत्रित और विनियमित किया जाता है? ऐसा क्यों है कि सामाजिक जीवन विभाजित और विघटित नहीं होता है? इन सवालों के बारे में दर्खाइम की प्रतिक्रिया विभिन्न समाजों और एकात्मकता के विभिन्न रूपों की उनकी समझ में निहित है। आप इस इकाई में एकजुटता के विभिन्न रूपों के बारे में जानेंगे।

खंड 3 में तीन इकाईयाँ हैं। पहली इकाई मैक्स वेबर के समाजशास्त्रीय विचार के योगदान से शुरू होती है। इसका उद्देश्य यह दिखाना है कि उस समय के सामाजिक और राजनीतिक परिप्रेक्ष ने किस तरह से उनके समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण को प्रभावित किया। दूसरी सामाजिक क्रिया और आदर्श प्रारूप पर केंद्रित है। यह सामाजिक क्रिया और सामाजिक क्रिया के प्रकारों की वेबरियन दृष्टिकोण की समझ की व्याख्या करती है। इसके बाद, यह वेबर की आदर्श प्रकार की आवधारणा को स्पष्ट करता है, यदि सामाजिक वास्तविकता को समझने में आदर्श प्रकार की अवधारणा है तो इसकी विशेषताओं और प्रासंगिकता पर प्रकाश डालती है। तीसरी इकाई शक्ति और प्राधिकरण की वेबरियन समझ की व्याख्या करती है। आप प्राधिकरण के प्रमुख विशेषताओं एवं प्रकारों के बारे में जानेंगे।

खंड 4 में तीन इकाईयाँ हैंः धर्म; अर्थव्यवस्था; और समाज, वर्ग और एकजुटता। प्रत्येक इकाई तुलनात्मक ढांचे में मार्क्स, दर्खाइम और वेबर के दृष्टिकोण पर चर्चा करती है। आप सीखेंगे कि कैसे और किस तरह से इन समाजशास्त्रियों के दृष्टिकोण समान और भिन्न थे। आप में से कुछ को आश्चर्य हो सकता है कि दृष्टिकोण की तुलना का क्या उद्देश्य है। मार्क्स, दर्खाइम और वेबर के दृष्टिकोण के बीच तुलना को सामने लाने का उद्देश्य यह समझना है कि किसी मुद्दे को विभिन्न दृष्टिकोणों से कैसे समझा जा सकता है। इसके अलावा, यह हमें एक घटना पर विभिन्न दृष्टिकोणों की पूरकता को समझने और हमारी अपनी समझ को गहरा करने में सक्षम करेगा।

खंड 1
कार्ल मार्क्स

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 1 कार्ल मार्क्स की कृतियों के दार्शनिक आधार*

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 कार्ल मार्क्स का जीवन–परिचय
 1.2.1 प्रारंभिक वर्ष
 1.2.2 बर्लिन काल
 1.2.3 पेरिस में
 1.2.4 क्रांतिकारी मार्क्स
 1.2.5 निष्कासन
1.3 सामाजिक–ऐतिहासिक पृष्ठभूमि
1.4. अन्य विचारकों के प्रभाव
 1.4.1 जर्मन दर्शन एवं आदर्शवाद
 1.4.2 भौतिकवादी परिप्रेक्ष्य
 1.4.3 राजनीतिक अर्थव्यवस्था परिप्रेक्ष्य
1.5 मुख्य विचार
 1.5.1 विसंबंध
 1.5.2 वर्ग और अधीनता का संबंध
 1.5.3 उत्पादन के साधन, संबंध, शक्तियाँ एवं रीतियाँ
1.6 सारांश
1.7 संदर्भ
1.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप

- कार्ल मार्क्स का जीवनचरित वर्णन करने के योग्य बन सकेंगे;
- कार्ल मार्क्स के लेखन को प्रभावित करने वाले प्रमुख बौद्धिक विचारों की संक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत करने के योग्य बन सकेंगे, और
- कार्ल मार्क्स की कृतियों में अभिव्यक्त प्रमुख विचारों को स्पष्ट करने के योग्य बन सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

कार्ल मार्क्स एक महान जर्मन दार्शनिक थे। उन्होंने विविध विषय–वस्तुओं को लेकर लेखन किया, जिनमें शामिल हैं– उत्पादन की पूँजीवादी रीति, वर्ग एवं वर्ग संघर्ष,

*सुमित सौरभ श्रीवास्तव, सेंटर फॉर ग्लाबलाइजेशन एंड डिवेल्पमेंट स्टडीज, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज द्वारा रचित; खंड 1.2 इग्नू पाठ्यसामग्री, ई.एस.ओ. 13:5–9 से अनुकूलित : नीता माथुर द्वारा लघु संशोधन

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

राजनीतिक अर्थव्यवस्था, अलगाववाद और ऐसे अनेकों अनेकों महत्वपूर्ण विषयवस्तु सम्मिलित है। इसके अलावा, उनकी अनेक विषय–वस्तुओं ने अर्थशास्त्र, इतिहास, राजनीति विज्ञान, समाजशास्त्र, आदि विषय–क्षेत्रओं में एक अर्थपूर्ण अंतर्दृष्टि भी प्रदान की। इकाई का आरंभ हम कार्ल मार्क्स के जीवन–परिचय से करेंगे ताकि आप उस सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक परिवेश से अवगत हो सकें जिसमें उनके विचार विकसित हुए। तदोपरांत, हम उन विशिष्ट बौद्धिक विचारों का अवलोकन करेंगे जिन्होंने उन्हें प्रभावित किया। अंततः, हम उनके लेखों में निहित कुछ महत्वपूर्ण विचारों को समझेंगे।

1.2 कार्ल मार्क्स का जीवन–परिचय

कार्ल मार्क्स के जीवन की पाँच प्रावस्थाएँ हैं। आइए, प्रत्येक प्रावस्था पर गूढ़ दृष्टि डालें

1.2.1 प्रारंभिक वर्ष

कार्ल हाईनरिश मार्क्स अपने माता–पिता हाईनरिश और हैनरिटा मार्क्स की दूसरी संतान व उनके सबसे बड़े पुत्र थे। उनका जन्म 5 मई, 1818 को जर्मनी के राइनलैण्ड प्रान्त के ट्रियर नामक नगर में हुआ, जहाँ उनके पिता हाईनरिश मार्क्स वकालत किया करते थे।

हाईनरिस मार्क्स जर्मनी के छोटे, परन्तु पूरी जर्मनी में फैले, यहूदी समुदाय के सदस्य थे। इस काल में जर्मनी में नेपोलियन का राज्य था और इसी काल में यहूदियों ने व्यापार एवं व्यवसाय के उन अवसरों का लाभ उठाया था जो कि उन्हें पहले उपलब्ध नहीं थे। नये विस्तृत अवसरों का लाभ उठाने के लिए अनेक यहूदी परिवारों ने अपनी पारम्परिक जीवन–शैली को बदल लिया था। वर्ष 1828 में नेपोलियन की हार के बाद वियना कांग्रेस ने जर्मन राईनलैंड प्रांत को प्रशा राज्य को सौंप दिया। इसका अर्थ यह था कि जर्मनी फिर एक बार सामन्तवादी राज्यों में बँट गया और यहूदियों को फिर से प्रजातीय, राजनीतिक तथा धार्मिक प्रतिबंधों को झेलना पड़ा। कुछ लोग बदली जीवनशैली को मार्ग नहीं छोड़ पाए और ऐसे लोगों में कार्ल मार्क्स के पिता भी थे।[...] (बर्लिन 1939:33)

वर्ष 1817 में कार्ल मार्क्स के जन्म के एक वर्ष पूर्व उसके पिता ईसाई चर्च के सदस्य बन गये। धर्म के प्रति कार्ल मार्क्स के उग्र दृष्टिकोण का एक कारण आंशिक रूप से यह भी हो सकता है कि उस समय इस प्रकार धर्म–परिवर्तन करने वाले लोगों को एक विशिष्ट दयनीय स्थिति से गुज़रना पड़ता था (बर्लिन 1939:33)।

अपने पिता की सलाह पर कार्ल मार्क्स ने बॉन विश्वविद्यालय के विधि संकाय में प्रवेश लिया। वर्ष 1836 के पतझड़ में उन्हें बर्लिन विश्वविद्यालय भेज दिया।

1.2.2 बर्लिन काल

बर्लिन विश्वविद्यालय में कार्ल मार्क्स का समय हीगलवादी दर्शन के प्रभाव में गुज़रा। वे युवा हीगलवादी के समूह के सदस्य बन गए। जर्मन बुद्धिजीवियों के जीवन में ये हताषा के वर्ष थे।[...]

न्याय–शास्त्र का छात्र होने के नाते कार्ल मार्क्स ने एडवर्ड गांस के व्याख्यानों को सुना जो कि उस समय हीगल के प्रमुख शिष्य थे। एडवर्ड गांस का कार्ल मार्क्स पर काफी

प्रभाव था। मार्क्स ने उनसे सैद्धान्तिक आलोचना की पद्धति सीखी। गांस ने मार्क्स को बताया कि न्याय–शास्त्र में इतिहास के दर्शन के सभी प्रकारों को प्रयुक्त और सत्यापित करने का वैधानिक क्षेत्र क्या है। इसके परिणामस्वरूप युवा मार्क्स ने प्रत्यक्षवाद पर हीगलवादी विचारों के प्रतिद्वन्द्वी सिद्धांत की रचना करने का प्रयास किया। इस पर मार्क्स के पिता की मीमांसीय परिकल्पनाओं को छोड़ देने की सलाह के बावजूद भी मार्क्स ने अपने विधिक अध्ययन को छोड़ दिया तथा दर्शन–शास्त्र के अध्ययन में पूरी तरह लीन हो गए।

कोलोन शहर के एक अंतर्राष्ट्रीय विधिवेत्ता मोज़ेज़ हेस ने *राईनिशे साईतुंग* (Rheinische Zeitung) नामक जर्नल में लेख लिखने के निमंत्रण दिलाने में मार्क्स की सहायता की। बाद में मार्क्स इसके मुख्य संपादक बन गए। शीघ्र ही उन्हें यह आभास हो गया कि वे जर्मनी में स्वच्छंद तरीके से लिख और बोल नहीं सकेंग। अतः मार्क्स ने फ्ऱांस जाने का निश्चय कर लिया। अपने विवाह के पश्चात् वर्ष 1843 में वे पेरिस चले गये।

1.2.3 पेरिस में

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में जब कार्ल मार्क्स पेरिस आये तो फ्ऱांस की इस राजधानी में यूरोप की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक उथल–पुथल मची हुई थी। लेकिन जहाँ तक मार्क्स का प्रश्न है, उनके मस्तिष्क में सिर्फ एक ही प्रश्न घूम रहा था कि फ्ऱांसीसी क्रांति के विफल होने का मुख्य कारण क्या था? क्या आपको पता है, मार्क्स ने इस प्रश्न का उत्तर पाने के लिए क्या किया?

उन्होंने क्रांति के ऐतिहासिक अभिलेखों और इनसे जुड़े विषयों पर तथा इस पर फ्ऱांस में लिखे गए असंख्य लेखों का अध्ययन किया। क्या आपको विश्वास होगा कि इस पच्चीस वर्षीय कठोर परिश्रमी युवक ने इस भीमकाय कार्य को मात्र एक वर्ष में ही पूरा कर लिया। वे दिन–रात अध्ययन में लीन रहते थे। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार उन्होंने तब पढ़ाई की थी जब उन्होंने युवा हीगलवादियों के समूह को अपनाया था और वे हीगलवाद के बारे में सब कुछ जानना चाहते थे। फ्ऱांस और इंग्लैंड के अर्थशास्त्रियों के कार्यों के अध्ययन के बाद मार्क्स को हीगलवाद से जुड़े हुए अनेक मुद्दों पर काफी स्पष्टता हो गई। उन्होंने फ्ऱांस तथा जर्मनी की सामाजिक, आर्थिक दशाओं की तुलना प्रारंभ की। यद्यपि मार्क्स फ्ऱांसीसी समाजवादी लेखकों तथा अंग्रेजी अर्थशास्त्रियों से प्रभावित थे, लेकिन वे इनकी विद्वता के आलोचक भी कम नहीं था। मार्क्स के अनुसार, इन विद्वानों ने इतिहास का मर्म नहीं समझा था। मार्क्स के विचार से इनकी विद्वता में गंभीरता तथा सत्यनिष्ठा का अभाव था।

लेकिन यह देखना बेहद दिलचस्प होगा कि एक तथ्य कार्ल मार्क्स जहाँ हीगलवाद के कट्टर आलोचक थे, वहीं दूसरी तरफ मानव समाज की संरचना के बारे में उन्होंने हीगल के विचारों को ही स्वीकार किया। दूसरे शब्दों में, हीगल की भाँति मानव इतिहास की प्रक्रिया के विभिन्न तत्वों के बीच औपचारिक संबंधों में मार्क्स की भी आस्था थी। परन्तु, इन तत्वों के बारे में उनकी समझ हीगल से हटकर फ्ऱांसीसी चिन्तक सेन्ट सिमों तथा उसके अनुयायियों के विचारों के अध्ययन पर टिकी थी। इस प्रकार हीगल की आलोचना करने से मार्क्स को एक नये दृष्टिकोण और एक नयी कार्य योजना का आधार मिल गया। यह वे समय था जब मार्क्स साम्यवाद में रुचि लेने लगे थे। इसी समय में उसकी मुलाकात फ्रेडरिक एंजल्स नामक क्रांतिकारी से हुई। ये एक जर्मन क्रांतिकारी थे तथा एक कपड़ा मिलमालिक के पुत्र थे। मार्क्स द्वारा प्रकाशित आर्थिक जर्नल में लेखन

सन्दर्भ में इन लोगों की मुलाकात वर्ष 1844 की पतझड़ ऋतु में हुई और इनके बीच दोस्ती हो गई जो लंबे समय तक कायम रही। अपने लेखन में उन्हें एंजल्स की मित्रता का बड़ा लाभ मिला। एंजल्स में अन्य विचारकों के बौद्धिक कार्यों की महत्ता को पहचानने, विश्लेषित करने तथा उनकी प्रायोगिक अनुप्रयाज्यता को समझने की अद्‌भुत क्षमता थी। (बर्लिन 1939:100)। न केवल यही, अपितु एंजल्स ने मार्क्स को सुरक्षा का भाव भी प्रदान किया जिसकी मार्क्स को काफी ज़रूरत थी। यह भी कहा जा सकता है कि इसके बदले में मार्क्स ने अपने मित्र को वे स्नेह दिया जो कि उन्होंने केवल अपनी पत्नी एवं बच्चों को ही दिया था।

पेरिस में मार्क्स का संक्षिप्त परन्तु अत्यधिक सर्जनात्मक काल वर्ष 1845 के प्रारंभ में उस समय समाप्त हो गया जब उन्हें पेरिस से निष्कासित कर दिया गया। समाजवादी पत्रिका, फ़ोएरवार्टस् *(Vorwarts)* में प्रशा के शासी राजा के खिलाफ़ टिप्पणी छपी थी और प्रशा के शासकों ने इन गतिविधियों से जुड़ें उस सम्पूर्ण समूह के निष्कासन की माँग की थी जिसमें कार्ल मार्क्स भी एक थे। अपनी पत्नी और एक वर्षीय बेटी के साथ पेरिस छोड़ वे ब्रसल्स चले गये जहाँ उनका मित्र एंजल्स भी आ गया। यहाँ जर्मन कम्युनिस्ट कामगार संगठनों के सम्पर्क में मार्क्स ने इन कामगारों के एक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की स्थापना का निश्चय किया। इस संगठन की शाखाएँ विभिन्न नगरों में थीं। यह उस काल की शुरुआत थी जब विचारक मार्क्स क्रांति के विचारदृष्टा *(visionary)* बन गये।

1.2.4 क्रांतिकारी मार्क्स

कामगारों के एक परिसंघ, कम्युनिस्ट लीग, के लिए कार्य करते हुए कार्ल मार्क्स एक क्रांतिकारी दल के संगठनकर्ता तथा नेता बन थे। वर्ष 1847 में, कम्युनिस्ट लीग की लंदन शाखा ने मार्क्स को पार्टी के उद्देश्य व लक्ष्यों को स्पष्ट करने वाले एक दस्तावेज को तैयार करने का जिम्मा सौंपा। कार्ल मार्क्स ने इस विचार रूपी पेशकश का स्वागत किया तथा वर्ष 1848 के आरंभ में इसे सृजित किया। इस दस्तावेज का प्रकाशन वर्ष 1848 की पेरिस क्रांति के कुछ सप्ताह पूर्व ही हुआ। इसे *द मैनेफेस्टो ऑफ़ द कम्युनिस्ट पार्टी* (1848) कहा गया।

कम्युनिस्ट पार्टी के उक्त घोषणा–पत्र के लेखन के फलस्वरूप, कार्ल मार्क्स एवं उनके परिवार को बेल्जियम तथा उसकी राज्य–सीमा से निष्कासित कर दिया गया। दूसरी ओर, उन्हें नई फ्रांसीसी सरकार द्वारा पेरिस आमन्त्रित किया गया। पेरिस में बहुप्रतीक्षित क्रांति प्रारंभ हो चुकी थी। अंतः मार्क्स तुरन्त पेरिस के लिए रवाना हो गये। मार्क्स, क्रांति के इस दौर से बहुत अधिक प्रभावित नहीं हुए और एक बार फिर वे पेरिस छोड़कर कोलोन चले गये ताकि उन्हें इस बात का पता चल सके कि वे अपनी मातृभूमि राईनलैण्ड में अपने विचारों को किस तरह से प्रतिपादित कर सकते थे।

उन्होंने अपनी पुरानी पत्रिका के ही नाम पर एक नई पत्रिका, *न्यू राईनिशे साईतुंग* का प्रकाशन आरंभ किया। इस पत्रिका में प्रकाशित लेखों को जनता बहुत चाव से पढ़ती थी। परन्तु शीघ्र ही प्रशा की सरकार के प्रति कार्ल मार्क्स के इस क्रांतिकारी रवैये के कारण इस पत्रिका को ज़ब्त कर लिया गया और इसका अन्तिम अंक लाल अक्षरों में प्रकाशित हुआ। इस अंक में प्रकाशित लेख के लिए मार्क्स को देशद्रोह के आरोप में गिरफ़्तार कर लिया गया और उन पर कोलोन के न्यायालय में मुकदमा चलाया गया।

यहाँ पर मुकदमे के दौरान अपनी पैरवी में कार्ल मार्क्स ने जर्मनी तथा अन्य देशों की सामाजिक–आर्थिक दशा पर एक प्रभावशाली व्याख्यान दिया। जूरी के सदस्यों ने उनके इन चेतनादायक भाषण के लिए, उन्हें धन्यवाद दिया तथा उन्हें सभी आरोपों से मुक्त कर दिया। लेकिन सरकार ने पहले ही उनकी नागरिकता वापिस ले ली थी, अतः जुलाई 1849 को उन्हें राइनलैण्ड से निष्कासित कर दिया गया। चूँकि उनके पास बहुत कम वैकल्पिक स्थान थे, जहाँ वे रह सकते थे, वे एक बार फिर पेरिस में थे जहाँ पर फ़्रांसीसी सरकार के आदेश के तहत उन्हें या तो फ्रांस छोड़ कर जाना था या आजीवन अज्ञातवास में गुजारना था।

1.2.5 निष्कासन

कार्ल मार्क्स ने मित्रों के सहयोग से एकत्रित धन से इंग्लैण्ड का टिकट खरीदा तथा अगस्त 1849 में वे लंदन आ गये। एक माह के पश्चात् उसका परिवार भी लंदन आ गया। नवम्बर में एंजल्स भी लन्दन पहुँच गये। क्या आपको पता है कि मार्क्स इंग्लैण्ड में कुछ सप्ताह रहने गये थे, परन्तु उनका अगला सारा जीवन (1883 तक) फिर यहीं गुजरा।

चूँकि उन दिनों यूरोप के घटनाचक्र से इंग्लैण्ड अधिक प्रभावित नहीं था, इसलिए कार्ल मार्क्स के लिए यह संभव हो सका कि वे वहाँ पर बिना किसी समस्या के रह सके। परन्तु इसके फलस्वरूप उन्हें बौद्धिक तथा राजनीतिक गतिविधियों से दूर अलग–थलग हो कर जीवन–यापन करना पड़ा। अपने परिवार और घनिष्ठ मित्रों के साथ उन्होंने वहाँ अपेक्षाकृत निष्क्रियता तथा भौतिक निर्धनता की स्थिति में जीवनयापन किया। लेकिन इस निष्क्रिय जीवन की बाध्यता ने उन्हें एक चिन्तक के रूप में विकसित होने में सहायता अवश्य की।

वर्ष 1864 में जब वर्कर्स इन्टरनेशनल की स्थापना लन्दन में हुई तो जर्मन कारीगरों के प्रतिनिधि के रूप में मार्क्स ने इसकी कार्यकारी समिति में हिस्सा लिया। वस्तुतः मार्क्स ने इस संगठन को सँभाला तथा इसका उद्घाटन भाषण भी दिया, जिसमें उन्होंने वर्ष 1848 से 1864 तक के कामगार वर्ग का सामाजिक व आर्थिक सर्वेक्षण प्रस्तुत किया। इस संगठन की वृद्धि बहुत तेज़ी से हुई और मार्क्स ने इसकी गतिविधियों को लन्दन से संचालित किया। मार्क्स जब इसकी गतिविधियों में व्यस्त थे तो उन्होंने अपनी महान कृति *दास केपिटल* के प्रथम खण्ड को वर्ष 1867 में प्रकाशित किया। इस कृति के दूसरे और तीसरे खण्ड को मार्क्स की मृत्यु के बाद एंजल्स ने सम्पादित किया। *दास केपिटल* ने एक खलबली मचा दी और अतिशीघ्र इसका फ़्रांसीसी, अंग्रेज़ी, रूसी और इतालवी भाषाओं में अनुवाद हुआ। आज तो इसका अनुवाद बहुत सी भारतीय क्षेत्रीय भाषाओं में भी उपलब्ध् है।[...]

कुल तीस वर्षों तक मार्क्स के लेख और भाषण मूलतः उस देश के विरुद्ध रहे थे जिसने अंततः उनके विचारों का स्वागत किया तथा उन्हें आधुनिक काल का सबसे बड़ा नायक बना दिया। यह देश रूस था। जब रूसी लोग लन्दन में मार्क्स से मिलने आते थे तो मार्क्स उनका स्वागत करते थे तथा उनसे अपने जीवन के मिशन के बारे में बात करते थे। उनके जीवन का मिशन पूँजीवादी समाज को जड़ से उखाड़ फेंकना था। मार्क्स ने रूसी क्रांतिकारियों को क्रांति के लिए प्रेरित किया। स्वयम् उन्होंने अपना समय लेखन और नोट्स बनाने में बिताया। फेफड़ों की लंबी बीमारी के कारण उनका स्वास्थ्य खराब

हो गया तथा वे अपने अध्ययन–कक्ष में आराम–कुर्सी पर सोते हुए 14 मार्च, 1883 को महाप्रयाण कर गया। [जीवन परिचय–कार्ल हाइनरिश मार्क्स (1818–83)।] [ईएसओ 13: 5–9]

1.3 सामाजिक–ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दियों में समस्त यूरोप में व्यापक आर्थिक परिवर्तन देखे गए। इन परिवर्तनों ने विशेष रूप से इंग्लैण्ड को प्रभावित किया। अधिकांश परिवर्तन आर्थिक क्षेत्र में एक औद्योगिक अर्थव्यवस्था के प्रवेश के कारण हो रहे थे। औद्योगिक अर्थव्यवस्था के आगमन के साथ ही सामंती समाज के पूर्व रूप में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन आने लगे। समाज अब सामंतवाद से पूँजीवाद की ओर अग्रसर था। ग्रामीण पृष्ठ प्रदेश से मैनचैस्टर, लिवरपूल आदि जैसे उदीयमान शहरी, औद्योगिक एवं आधुनिक केन्द्रों की ओर पलायन का मानो सैलाब उमड़ पड़ा। साथ ही, व्यापार संघों का वर्चस्व अब घटता नजर आने लगा। इस गिरावट ने तत्कालीन अर्थव्यवस्था में पूँजीवादी विस्तार को अधिक संभावनाएँ प्रदान कीं। उपर्युक्त परिवर्तियों ने यूरोपीय समाज पर गहरा प्रभाव डाला। इसके साथ ही, तीव्र औद्योगीकरण प्रक्रिया और औद्योगिक कामगारों (मजदूर वर्ग) की भयावह कार्य–दशाओं ने व्यापक दरिद्रता और उनके बीच सामाजिक विक्षोभ की स्थिति उत्पन्न कर दी। एक प्रकार से, यह सब फ्ऱांस और समस्त यूरोप में सामाजिक क्रांति की पराकाष्ठा दर्शाता था। इन विशिष्ट ऐतिहासिक दशाओं ने मार्क्स को बहुत अधिक प्रभावित किया और धीरे–धीरे आर्थिक प्रश्नों एवं आर्थिक समस्याओं के साथ ही उनकी बढ़ती वचनबद्धता उनके बहुसंख्य लेखों में अभिव्यक्त होने लगी। उन पर एक महत्वपूर्ण प्रभाव एंजल्स की कृति *द कंडीशन ऑफ़ द वर्किंगक्लास इन इंग्लैण्ड इन 1844* संबंधी उनकी व्याख्या के रूप में सामने आया, जिसने उन्हें औद्योगिक कर्मचारियों की दुर्गति की प्रकृति एवं विस्तृति दोनों से अवगत कराया। तदंतर, कामगारों के आंदोलन के साथ उनकी वचनबद्धता अधिकाधिक उत्कट होती गई। मार्क्स और एंजल्स ने साम्यवाद संबंधी अपना तत्वज्ञान विकसित किया और मजदूर–वर्ग आंदोलन के बौद्धिक नेता बन गए।

जैसा कि हमने पिछले भाग में जाना, वर्ष 1847 में मार्क्स को लंदन में रह रहे क्रांतिकारी जर्मन कामगारों एक समिति का घोषणा–पत्र 'मैनिफेस्टो' लिखने का आमन्त्रण मिला था। मार्क्स और एंजल्स ने इस समूह को नया नाम दिया–कम्युनिस्ट लीग, और इस लीग के सिद्धांतों का संक्षेपण कर एक घोषणा–पत्र लिखना शुरू कर दिया। जनवरी 1848 में मार्क्स ने *द कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो* लिखा, जिसमें यह ऐतिहासिक बयान दर्ज था कि 'सर्वहारा वर्ग के पास खोने के लिए अपनी बेड़ियों के सिवा कुछ नहीं है। उन्हें एक जंग जीतनी है। समस्त जगत के मजदूर इस जंग जीतने के लिए, एक हो!

औद्योगिक पूँजीवाद के उदय एवं क्रमिक समेकन ने उन्हें शोषणकारी व्यवस्था की आलोचना करने की दिशा में और अधिक जागरूक और सुस्पष्ट बना दिया। जीवनकाल कार्ल हाइनरिश मार्क्स (1818–83) (ईएसओ 13:5–9 से उद्धृत)

1.4 अन्य विचारकों के प्रभाव

मार्क्स की रचना को उस बौद्धिक प्रसंग के आलोक में समुचित रूप से समझा जा सकता है जिससे उसका निर्गमन हुआ। आइए, मार्क्स को प्रभावित करने वाले उन बौद्धिक विचारों पर अब एक नजर डालें ।

1.4.1 जर्मन दर्शन एवं आदर्शवाद

अपने छात्र–जीवन के आरंभिक वर्षों में मार्क्स तत्कालीन जर्मन दर्शन और आदर्शवाद से बेहद प्रभावित हुए। अधिक विशेष रूप से, जॉर्ज विल्हम फ्रेड्रिक हीगल और लुड़विग फ़ायरबाख का प्रभाव उनके लेखों में देखा जा सकता है। हीगल के विचार आदर्शवाद दर्शन के व्यापक प्राधार में खोजे जा सकते हैं। अपने सामान्य अर्थ में, आदर्शवाद दर्शन विचारों पर बल देता है, जैसे–सामाजिक परिवर्तन के कारण। इसके अलावा, हीगल द्वंद्व न्याय को तीन तत्वों की दृष्टि से स्पष्ट करते हैं, अर्थात्– अभिधारणा, प्रतिस्थापना एवं संश्लेषण। अभिधारणा किसी भी प्रदत्त समय–बिंदु पर समाज में अभिभावी उन विचारों का प्रबल रूप होती है जो 'सत्य' माने जाते हैं। प्रतिस्थापना उन विचारों की विलोम श्रंष्खला होती है जो किसी कालावधि विशेष में निरूपित किए जाते हैं। कालांतर में, ये अभिधारणा और प्रतिस्थापना संश्लेषण के रूप में सामंजस्य स्थापित कर लेती हैं। आगे चलकर, यह संश्लेषण अभिधारणा की भूमिका निभाता है। नई अभिधारणा के विरोध में नई प्रतिस्थापना का उद्‌गम होता है और परिणामतः नया संश्लेषण फिर सामने आता है। इस दृष्टि से, इतिहास में प्रगति किसी अवधारणा (अर्थात्, अभिधारणा,) और उसका विरोध (अर्थात्, प्रतिस्थापना) के बीच द्वंद्वों की श्रृंखला के माध्यम से होती है, जो कि फिर नए विचार (अर्थात्, संश्लेषण) को जन्म दिए जाने की ओर प्रवशत होती है।

मार्क्स ने हीगल के द्वंद्व–न्याय संबंधी विचारों को स्वीकार किया परंतु वे विचारों पर बल दिए जाने से सहमत नहीं थे। विचारों के स्थान पर मार्क्स ने भौतिक बलों की प्रस्तुत कीं और द्वंद्वात्मक भौतिकवाद की अवधारणा को विकसित किया। द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के विषय में हम इकाई 2 में विस्तार से पढ़ेंगे। मार्क्स ने पूँजीवादियों और सर्वहारा वर्ग के बीच द्वंद्वात्मक संबंध पर बहुत सावधानी से विचार किया। साथ ही उन्होंने समाज में परिवर्तनों के द्वंद्वात्मक इतिहास का संबंध आदिम से लेकर सामंती से होते हुए पूँजीवादी समाज से भी जोड़ा। इसके अलावा, द्वंद्वात्मक दृष्टिकोण यह विचार लेकर चलता है कि समाज के विभिन्न पहलू निरंतर एक–दूसरे से संघर्षरत रहते हैं। इस व्यवस्था का अनुसरण कर, मार्क्स ने पूँजीवादियों और सर्वहारा वर्ग के बीच विरोधाभास देखा। उनका मानना था कि जबकि पूँजीवाद का नितांत आधार कामगार वर्ग का शोषण है, यही शोषण कामगार वर्ग के लिए विद्रोह करने और पूँजीवाद को उखाड़ फेंकने हेतु परिस्थितियाँ पैदा करेगा।

मार्क्स को प्रभावित करने वाले लेखों की एक अन्य श्रृंखला लुडविग फ़ायरबाख़ की ओर से आई, जो कि एक जर्मन दार्शनिक थे। जबकि हीगल का मानना था कि 'असली इंसान' ईश्वरीय शक्ति से उत्पन्न होता है, फ़ायरबाख़ का तर्क था कि 'असली इंसान' वे है जो 'असल, भौतिक जगत में जीवन–यापन करता है। फ़ायरबाख के अनुसार, मनुष्य ईश्वर की एक छवि बना लेता है जिस पर वे वे आदर्श गुण अध्यारोपित करता है जो कि वे स्वयं प्राप्त नहीं कर सकता। मानवमात्र ईश्वर की भाँति बनने के लिए संघर्ष करता रहता है परंतु यह संभव नहीं होता। इस प्रक्रिया में, बहरहाल, वह मानवीय गुणों का महत्त्व नहीं समझ पाता और इस अर्थ में वह धार्मिक इतरीभवन या विसंबंध से पीड़ित रहता है। मार्क्स को फ़ायरबाख़ के विचारों की जिस बात ने आकर्शित किया वह थी–धर्म के भौतिक आधारों पर बल। मार्क्स को, बहरहाल, लगता था कि फ़ायरबाख़ को धार्मिक इतरीभवन का संबंध आर्थिक क्रियाकलाप से जोड़ना चाहिए था। मार्क्स महसूस करते थे कि इतर भवन या अन्याभवन मनुष्य की सामाजिक एवं आर्थिक गतिविधियों से जन्म लेता है। इससे संबद्ध विसंबंध की संकल्पना के विषय में हम भाग 1.5.1 में विस्तार

से पढ़ेंगे। मार्क्स ने इसका अपने ही भौतिकवादी परिप्रेक्ष्य में विषदीकरण किया और कहा कि धर्म उन लोगों का हस्तकौशल हैं जो अमीर वर्ग से आते हैं, अर्थात् उत्पादन के साधनों से सम्पन्न हैं और राजनीतिक रूप से सबल हैं। धर्म एक प्रकार से प्रतिदिन की पीड़ा और कष्ट को ढक देता है और उन्हें धार्मिक आदर्शों का वास्ता देकर सही ठहराता है।

बोध प्रश्न 1

1) कार्ल मार्क्स के विचारों को प्रभावित करने वाले किन्हीं दो विचारकों के नाम लिखिए।

....

....

....

....

....

....

....

2) द्वंद्वात्मक दृष्टिकोण का मुख्य केंद्र बिंदु क्या हैं?

....

....

....

....

....

....

....

1.4.2 भौतिकवादी परिप्रेक्ष्य

भौतिकवादी परिप्रेक्ष्य मार्क्स के समाज संबंधी विश्लेषण का केन्द्र–बिंदु है। आप अवश्य ही यह जानना चाहेंगे कि भौतिकवाद क्या है? आइए, भौतिकवाद का अर्थ समझने के लिए बॉक्स 1.1 पर नज़र डालें।

बॉक्स 1.1 भौतिकवाद

"भौतिकवाद में सभी वस्तुओं, यहाँ तक कि धर्म की भी, वैज्ञानिक व्याख्या की जाती है। भौतिकवाद को आदर्शवाद (idealism) की संकल्पना के विपरीत देखा जा सकता है। आदर्शवाद वह सिद्धांत है जिसमें अंतिम यथार्थ पारलौकिक होता है। परंतु भौतिकवाद इस बात में विश्वास करता है कि सभी वस्तुएँ

स्थूलकाय पदार्थ पर आधारित हैं। भौतिकवाद की चर्चा तीन प्रकार से की जा सकती है, यथा–दार्शनिक भौतिकवाद, वैज्ञानिक भौतिकवाद तथा ऐतिहासिक भौतिकवाद। प्रथम दो प्रकार के भौतिकवादों की परिभाषा में न जाते हुए हम यह बता दें कि ऐतिहासिक भौतिकवाद मानवीय इतिहास के विकास में भौतिक दशाओं के उत्पादन की मूलभूत और कारणात्मक भूमिका पर ज़ोर देता है। यथार्थ की इस भौतिकवादी व्याख्या के संदर्भ में ही मार्क्स ने ऐतिहासिक घटनाओं का अध्ययन किया।''(ईएसओ 13, खण्ड 2:15–16)

मार्क्स के अनुसार, किसी समाज का प्राधार एवं उसका विकास उस समाज की भौतिक दशाओं अथवा आर्थिक उपादानों से ही अनुकूलित होते हैं। मार्क्स द्वारा दी गई भौतिकवाद की अवधारणा का मिलान एवं उसकी तुलना आदर्शवाद से की जा सकती है, जो कि हीगल से काफी जुड़ी है। जबकि आदर्शवाद इस सिद्धांत से संबंधित है कि परम सत्य अवधारणाओं के माध्यम से समझा और स्पष्ट किया जा सकता है, भौतिकवाद का तर्क है कि हर वस्तु, जो अस्तित्वपरक है, पदार्थ पर निर्भर है। इसमें मानव अस्तित्व की यथार्थ दशाओं का अध्ययन किया जाता है। हम, तदनुसार, देख सकते हैं कि ये दोनों परिप्रेक्ष्य स्वभावतः द्विध्रुवीय हैं। एक विचार या अवधारणा को महत्व देता है तो दूसरा अस्तित्व की भौतिक दशाओं को। समाज विषयक मार्क्स की सामान्य अवधारणाएँ उसके ऐतिहासिक भौतिकवाद के सिद्धांत के रूप में जानी जाती हैं। आइए, ऐतिहासिक भौतिकवाद विषयक कुछ और जानकारी बॉक्स 1.2 से प्राप्त करें।

बॉक्स 1.2 ऐतिहासिक भौतिकवाद

''समाज के बारे में मार्क्स के सामान्य विचारों को ही उसका ऐतिहासिक भौतिकवादी सिद्धान्त कहा जाता है। भौतिकवाद (Materialism) समाजशास्त्र के चिन्तन का आधार है क्योंकि मार्क्स के अनुसार,भौतिक दशाएँ अथवा आर्थिक कारक समाज की संरचना और विकास को प्रभावित करते हैं। उसके सिद्धांत के अनुसार, भौतिक दशाएँ अनिवार्यतः उत्पादन के प्रौद्योगिकीय साधन बनती हैं तथा मानवीय समाज उत्पादन की शक्ति और संबंधों से बनता है।

आइए, हम यहाँ आपको मार्क्स के समाज के सिद्धांत के बारे में बताएँ कि इसे ऐतिहासिक तथा भौतिकवादी क्यों कहा जाता है। यह ऐतिहासिक इसलिए है कि मार्क्स ने इसके द्वारा मानव समाजों की एक अवस्था से दूसरी अवस्था में विकसित होने की क्रिया को बताया है। इसे भौतिकवादी इसलिए कहा गया क्योंकि मार्क्स ने मानव समाज के विकास की व्याख्या भौतिक अथवा आर्थिक आधारों पर की है।

फ्रेडरिक एंजल्स के अनुसार, ऐतिहासिक भौतिकवाद का सिद्धान्त मार्क्स ने प्रतिपादित किया था। जबकि मार्क्स के अनुसार, यह फ्रेडरिक ही थे जिन्होंने स्वतंत्र रूप से इतिहास के भौतिकवादी निरूपण की कल्पना की थी।''(ईएसओ–13, खण्ड 2:12–13)

ऐतिहासिक भौतिकवाद के तीन प्रमुख सिद्धांत हैं– (i) समाज की आर्थिक संरचना सर्वाधिक महत्वपूर्ण सिद्धांत है, (ii) अर्थव्यवस्था समाज में राजनीति और संस्कृति को निर्धारित करती है, तथा (iii) अवधारणाओं की बजाय, आर्थिक संरचना राजनीतिक एवं विधिक अधिसंरचना निर्धारित करती है। ऐतिहासिक भौतिकवाद सामाजिक, सांस्कृतिक

एवं राजनीतिक परिघटनाओं की एक भौतिकवादी व्याख्या है। ऐतिहासिक भौतिकवाद संबंधी उसका सिद्धांत अपनी प्रकृति में ऐतिहासिक भी है और भौतिकवादी भी। यह ऐतिहासिक इसलिए है कि मार्क्स ने एक चरण से दूसरे चरण तक मानव समाजों का क्रम—विकास प्रस्तुत किया है। यह भौतिकवादी इसलिए है कि उन्होंने समाजों के क्रम—विकास की व्याख्या उनके भौतिक अथवा आर्थिक आधारों में परिवर्तनों की दृष्टि से की है। विकासवादी परिप्रेक्ष्य में, समाज के इतिहास को क्रम—विकास के आनुक्रमिक चरणों के माध्यम से देखा जाता है।

मार्क्स ने ऐतिहासिक भौतिकवाद संबंधी अपने सिद्धांत की रूपरेखा *'ए कंट्रीब्यूशन टु द क्रिट्रीक ऑफ़ पॉलिटिकल इकॉनमी'*के 'प्राक्कथन' में यह कहते हुए प्रस्तुत की— मनुष्य का अस्तित्व निर्धारित करने वाला, अतएव, उसका अंतःकरण नहीं है बल्कि उसका सामाजिक अस्तित्व ही उसका अंतःकरण निर्धारित करता है।'समाज को अर्थव्यवस्था में ही अपना आधार रखने वाले एक विचार के रूप में देखा जाता है— जिसे अवसंरचना कहा जा सकता है। समाज की यह आर्थिक अवसंरचना उत्पादन शक्ति एवं संबंधों से मिलकर बनती है। इन संकल्पनाओं के विषय में हम भाग 1.5.3 में पढ़ेंगे। समाज की अधिसंरचना अर्थात् विधिक एवं राजनीतिक विचारधारा उत्पादन संबंधों पर आधारित होती है। समाज के अन्य पहलू , अर्थात् इतिहास, राजनीति, कानून, धर्म, शिक्षा आदि आर्थिक संरचना से ही प्रभावित होते हैं। ऐतिहासिक भौतिकवाद भी सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया संबंधी मार्क्स की व्याख्या की आधारशिला है। समय के साथ उत्पादन शक्तियाँ क्रमविकसित होती हैं। जब ऐसा होता है तो वे उत्पादन के विद्यमान संबंधों का खण्डन कर देती हैं। जब यह खण्डन प्रचण्ड रूप ले लेता है तो उत्पादन की विद्यमान विधि एवं उसकी अधिसंरचना भंग हो जाती हैं। उत्पादन शक्तियों के अनुरूप उत्पादन के नए संबंध जन्म लेते हैं। उत्पादन शक्तियों एवं उत्पादन संबंधों के बीच द्वंद्व सामाजिक विकास के मूल में अवस्थित होता है जो कि समाजों के इतिहास को स्पष्ट करता है। तदनुसार, इस संघर्ष को एक ऐसी रचनात्मक शक्ति के रूप में देखा जाता है जिसमें प्रगति की रफ्तार तेज होती है।

मार्क्स ने मानव इतिहास के चरणों का वर्णन उत्पादन की चार रीतियों के रूप किया, अर्थात्— एशियाई, प्राचीन, सामंती एवं पूँजीवादी। उनके अनुसार उत्पादन की प्राचीन, सामंती एवं पूँजीवादी रीतियों ने पश्चिमी समाजों में एक के बाद एक क्रम में एक—दूसरे का अनुसरण किया। उत्पादन की एशियाई रीति उन समाजों का अभिलक्षण है जिनमें भूमि का स्वामित्व साम्प्रदायिक होता है, नातेदारी संबंध प्रबल होते हैं, और उत्पादन प्रक्रिया एवं श्रमिक वर्ग पर राज्य का नियंत्रण होता है। उसका मानना था कि उत्पादन की पूँजीवादी रीति के पश्चात् समाजवाद—साम्यवाद आएगा। उत्पादन की प्रत्येक रीति में उत्पादन साधनों पर स्वामित्व एक वर्ग के हाथों में ही होता है। इससे उत्पादन संबंध एवं वर्ग संबंध निर्धारित हो जाते हैं जो कि उत्पादन प्रक्रिया से निर्गत होते हैं। उत्पादन की प्राचीन रीति दास प्रथा से, उत्पादन की सामंती विधि कृषि दासता से और उत्पादन की पूँजीवादी (बुर्जुआ) रीति मजदूरी पाने से अभिलक्षित है। उत्पादन की एशियाई रीति राज्य अथवा शासकीय नौकरशाही के प्रति सभी लोगों की अधीनता से अभिलक्षित होती है। उत्पादन विधियों के विषय में हम भाग 1.5.3 में पढ़ेंगे। क्या मार्क्स के ऐतिहासिक भौतिकवाद की तुलना आर्थिक नियतत्ववाद से की जा सकती है? आइए, इसका पता लगाने के लिए बॉक्स 1.3 पर नज़र डालें।

बॉक्स 1.3 ऐतिहासिक भौतिकवाद आर्थिक नियतत्ववाद नहीं हैं।

''यह संभव है कि आप मार्क्स को आर्थिक निर्धारणवाद अथवा इस विचार का प्रतिपादक मान लें कि केवल आर्थिक दशाएँ ही समाज के विकास को निश्चित करती हैं। परन्तु यहाँ पर यह स्पष्ट किया जाएगा कि ऐतिहासिक भौतिकवाद आर्थिक निर्धारणवाद से अलग है। मार्क्स ने यह माना कि संस्कृति के बिना किसी भी प्रकार का उत्पादन संभव नहीं है। उनके अनुसार उत्पादन की रीतियाँ में उत्पादन के सामाजिक संबंध भी समाहित होते हैं। ये संबंध उस आधिपत्य एवं अधीनता के होते हैं जिसमें पुरुष एवं स्त्रियों ने जन्म लिया होता है अथवा जहाँ वे स्वेच्छा प्रवेश नहीं करते। जीवन एवं जीवन के भौतिक साधनों के पुनरुत्पादन को कामगार लोगों की संस्कृति प्रतिमानों तथा रीति–रिवाज़ों को समझे बिना नहीं समझा जा सकता है और ये वे हैं जिन पर शासक शासन करते हैं। मजदूर वर्ग की संस्कृति की समझ हमें उत्पादन की रीतियों को समझने में सहायता देती है।

''वर्ग एक ऐसी श्रेणी है जो व्यक्तियों के समय के साथ बनने वाले संबंधों का वर्णन करती है। इसी श्रेणी में वे तरीके भी आते हैं जिनसे लोग इन संबंधों के प्रति जागरूक हो जाते हैं। वर्ग में उन तरीकों का भी वर्णन होता है जिनसे लोग में बँट जाते हैं या आपस जुड़ते हैं, संघर्ष में शामिल होते हैं, संस्थाएँ खड़ी करते है और वर्ग के अनुरूप मूल्यों का अंतरण करते हैं। वर्ग एक 'आर्थिक' और 'सांस्कृतिक' गठन होता है। वर्ग को किसी विशुद्ध आर्थिक श्रेणी में रखना असंभव है।'' (ईएसओ 13, खंड 2: 21–22)

1.4.3 राजनीतिक अर्थव्यवस्था परिप्रेक्ष्य

यह चर्चा करने से पहले कि मार्क्स पर राजनीतिक अर्थव्यवस्था परिप्रेक्ष्य का कितना प्रभाव पड़ा था, आइए, यह समझें कि 'राजनीतिक अर्थव्यवस्था' क्या है? अपने सरलतम अर्थ में, राजनीतिक अर्थव्यवस्था से तात्पर्य है– राजनीति एवं अर्थव्यवस्था के बीच का संबंध। इस अर्थ में, राजनीति और अर्थशास्त्र को एक–दूसरे से अलग नहीं माना जा सकता है। राजनीतिक अर्थव्यवस्था इस प्रष्न को हल करने का प्रयास करती है– राजनीति और नीतियाँ आर्थिक परिणामोंयथा – आर्थिक संवृद्धि, व्यापार, रोज़गार, समाज एवं धर्मों के विभिन्न वर्गों के बीच आय असमानता, को किस प्रकार प्रभावित करती हैं? एन्जल्स ने राजनीतिक अर्थव्यवस्था को उन कानूनों की दृष्टि से स्पष्ट किया जो 'जीवन, निर्वाह के भौतिक साधनों, के उत्पादन एवं विनिमय को नियंत्रित करते हैं। मार्क्स ने, बहरहाल, राजनीतिक अर्थव्यवस्था की संकल्पना पर चर्चा नहीं की बल्कि इसकी आलोचना की कला विकसित की। गिड्न्स (1998) ने मार्क्स द्वारा प्रस्तुत राजनीतिक अर्थव्यवस्था की दो मुख्य आलोचनाओं का उल्लेख किया है। पहली आलोचना इस मूल अवधारणा का कड़ी निंदा करती है कि पूँजीवाद का अभिलक्षण दर्शाने वाली उत्पादन दशाएँ अर्थव्यवस्था के सभी रूपों में देखी जा सकती हैं। मार्क्स का तर्क है कि पूँजीवाद उत्पादन–तंत्र का एकमात्र रूप नहीं है। जैसा कि हमने पिछले भाग में देखा, पूँजीवाद से पूर्व उत्पादन–तंत्रों के अन्य रूप विद्यमान थे और उत्पादन–तंत्रों के अन्य रूप पूँजीवाद के उपरांत भी उभर सकते हैं। उनकी दूसरी आलोचना अर्थशास्त्रियों के इस व्यवहार पर प्रहार करती है कि वे हर वस्तु को आर्थिक मूल्य एवं आर्थिक संबंधों में लघुकृत कर देते हैं। उनके अनुसार, 'वस्तुएं', 'मूल्य' आदि मानव

हस्तक्षेप से स्वतंत्र होते हैं। राजनीतिक अर्थव्यवस्था ढाँचे में, वे लोग जो उत्पादन प्रक्रिया में लिप्त नहीं होते जैसे– बेरोज़गार, भिखारी, आदि' अस्तित्व नहीं रखते। आर्थिक श्रेणियों में वस्तुओं एवं लोगों दोनों का लघुकरण रुचिकर नहीं है। समाज में वर्ग–विभाजन की अर्थशास्त्रियों द्वारा सुविधापूर्वक उपेक्षा की जाती है। वास्तविकता, बहरहाल, यह है कि मजदूरी और मुनाफा पर मजदूर, वर्ग और पूँजीवादी वर्ग के बीच शाश्वत संघर्ष रहा है। मार्क्स का दावा है कि उत्पादन की पूँजीवादी रीति में मुनाफे का बड़ा भाग पूँजीपतियों (अर्थात्, वे जो भूमि व पूँजी के स्वामी होते हैं) द्वारा हड़प लिया जाता है। मजदूर वर्ग के हाथों में दोनों में से कुछ नहीं होता–न तो उत्पादन प्रक्रिया, और न ही वह वस्तु जो कि वे बनाते हैं। अपने ही बनाए माल से वे कोई संबंध दर्शा पाने में विफल रहते हैं। इसी को मार्क्स ने श्रमिकों का 'विसंबंध' (alienation) कहा।

मार्क्स के अनुसार, हर वस्तु के उससे जुड़े दो प्रकार के मूल्य होते हैं– 'प्रयोग–मूल्य' और 'विनिमय मूल्य'। वस्तु का प्रयोग–मूल्य उसके उपभोग में होता है और विनिमय–मूल्य किसी उत्पाद के उस समय के मान को इंगित करता है जब उसका अन्य उत्पादों के साथ लेन–देन किया जाता है। मूल्य का श्रम सिद्धांत *(लेबर थियोरी ऑफ़ वैल्यू)* एडम स्मिथ और डेविड रिकार्डो दोनों के अनुसार, कहता है कि यह मानव श्रमशक्ति ही है जो किसी वस्तु को उसके प्रयोग एवं विनिमय–मूल्य की दृष्टि से मूल्यवान बनाती है। इस प्रस्थापना ने मार्क्स को अत्यधिक प्रभावित किया, जो कि उन्होंने तदंतर अधिशेष मूल्य और अधिशेष श्रम का निर्गमन स्पष्ट करने के लिए किंचित् परिवर्तित की। उनके अनुसार, किसी भी वस्तु के उत्पादन में मानव–श्रम, कच्चा–माल एवं यंत्र–समूह की लागतें शामिल होती हैं, जो कि उद्योग अथवा कारखाने के मालिक/पूँजीपति द्वारा वहन की जाती हैं। पूँजीपति वर्ग मानव–श्रम खरीदता है और तदनुसार वस्तु का उत्पादन एवं विक्रय करता है। अधिशेष मूल्य, जो कि लाभ का स्रोत होता है, को प्राप्त करने के लिए पूँजीपति अधिकतम उत्पादन करता है और मानव–श्रम लागत कम रखने का प्रयास करता है। इस प्रकार, पूँजीपति अधिशेष मूल्य प्राप्त करता है, जो कि यद्यपि एक आर्थिक संकल्पना है, पूँजीपति और औद्योगिक श्रमिक के बीच प्रभुत्व एवं अधीनता के संबंध से संरूपित की जाती है। यह मानव–श्रम के शोषण एवं विनियोजन के इतने उच्चीकृत अर्थ में होता है कि श्रमिक में अन्यीभवन का भाव पहले ही घर कर जाता है, जो कि प्रभावपूर्ण ढंग से दिशा पाकर सामाजिक क्रांति की ओर ले जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि 'प्रयोग–मूल्य एवं विनिमय 'मूल्य' जैसी अमिश्रित आर्थिक श्रेणियों तथा मानव–श्रम लागत को मार्क्स द्वारा राजनीतिक अर्थव्यवस्था के प्राधार के भीतर ही किंचित् परिवर्तित किया गया है ताकि पूँजीवाद का उदय स्पष्ट किया जा सके।

बोध प्रश्न 2

(i) ऐतिहासिक भौतिकवाद के प्रमुख सिद्धांत क्या हैं?

....

....

....

....

....

....

....

(ii) राजनीतिक अर्थव्यवस्था से आप क्या समझते हैं?

....

....

....

....

....

....

....

....

1.5 मुख्य विचार

आइए, मार्क्स के लेखों में समाविष्ट कुछ महत्वपूर्ण अवधारणाओं को समझें।

1.5.1 विसंबंध

मार्क्स द्वारा उनके लेखों में प्रयुक्त विसंबंध की संकल्पना हीगल से उत्पन्न है। वस्तुतः हीगल के अनुसार, विचार ही वह सर्वव्यापी परमतत्व है जिससे मनुष्य को विमुख अर्थात् अलग कर दिया गया है। सरल शब्दों में, हीगल के अनुसार, हम अपनी ही धारणाओं एवं रचनाओं को स्वयं से भिन्न या बाह्य के रूप में देखते हैं। आगे चलकर, हम इस विसंबंध को वश में कर लेते हैं। फ़ायरबाख हीगल की इस बात से सहमत नहीं थे कि विचार पराभौतिक अर्थ में मनुष्य से कहीं अधिक महत्वपूर्ण होता है। फ़ायरबाख के अनुसार, मनुष्य ने जो भी सर्वोत्तम गुण वह सोच सकता था, एक 'ईश्वर' नामक सत्ता में व्यक्त कर दिए। मनुष्य की यह मूर्त–रूप प्रदत्त, वस्तु–रूप रचना अर्थात् ईश्वर मनुष्य को उसके स्वयं से ही भिन्न के रूप में निरूपित करता है। जबकि मार्क्स ने हीगल की विसंबंध संबंधी अवधारणा को स्वीकार किया, उन्होंने इस विचार को निरस्त किया कि विसंबंध का वास्ता। केवल चेतना से ही है। मार्क्स के अनुसार, विसंबंध में अपने ही श्रम और अपनी ही बनाई वस्तुओं से श्रमिकों के पृथक्करण का भाव सम्मिलित होता है। किसी बढ़ई का उदाहरण लीजिए जो कुर्सी तो बनाता है मगर इस कुर्सी का वह अपने लिए प्रयोग नहीं कर सकता। उसकी स्वयं की बनाई कुर्सी बिक्री के लिए है, न कि उसके अपने प्रयोग के लिए। किसी जूता फ़ैक्टरी में, उदाहरण के लिए, कोई श्रमिक माना केवल एड़ी बनाता है जबकि कोई दूसरा जूते का उपरी भाग बनाता है और कोई तीसरा इन सभी भागों को जोड़कर जूता बनाता है। यहाँ प्रत्येक श्रमिक का कार्य यांत्रिक किस्म का है, न कि रचनात्मक। मार्क्स के अनुसार विसंबंध चार प्रकार से होता है – (क) श्रमिकों का अपनी बनाई वस्तुओं पर नियंत्रण नहीं रहता; (ख) श्रमिकों का अपने ही क्रियाकलाप पर नियंत्रण नहीं रहता क्योंकि वे अपने श्रम को वेतन के बदले बेच देते हैं और उत्पादन प्रक्रिया को महज़ एक अजीविका का साधन मानते हैं; (ग)

श्रमिकों को बिना किसी रचनात्मकता अथवा मानसिक वचनबद्धता के यांत्रिक रूप से उत्पादन दर्शाना होता है; और (घ) श्रमिकों का निजी श्रम उन्हें आत्म–केंद्रित एवं व्यक्तिवादी बना देता है, वे एक–दूसरे से प्रतिस्पर्धा करते हैं। यह भावना उन्हें एक–दूसरे से अलग कर देती है।

1.5.2 वर्ग और अधीनता का संबंध

वर्ग की अवधारणा समाज के मार्क्सवादी विश्लेषण संबंधी लेखों में प्रमुख है। मार्क्स के अनुसार, सामाजिक वर्ग उत्पादन प्रक्रिया में एक निश्चित स्थान रखता है और तदनुसार उत्पादन के संबंधों में भी। उनके अनुसार, मानव इतिहास के आरंभ में, चूँकि भूमि का स्वामित्व सामूहिक किस्म का होता था अर्थात् भूमि किसी एक व्यक्ति या समूह की नहीं होती थी। इसे वर्ग–विहीन समाज के रूप में देखा जाता था। एक व्याख्या यह भी है कि वर्ग सम्पत्ति के उपसिद्धांत और सम्पत्ति स्वामित्व के रूप में सामने आती है। अपनी पुस्तक *कैपिटल* (1894) में मार्क्स ने तीन वर्गों को पहचाना, जो कि आय के तीन स्रोतों से संबद्ध थे; अर्थात्– (क) साधारण श्रम–शक्ति अथवा श्रमिकों के स्वामी, जिनकी आय का मुख्य स्रोत श्रम होता है; (ख) पूँजी के स्वामी अर्थात् पूँजीपति, जिनकी आय का मुख्य स्रोत लाभ अथवा अधिषेश मूल्य होता है; तथा (ग) भूस्वामी जिनकी आय का मुख्य स्रोत लगान होता है। यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि मार्क्स के दो लेखों *रिवल्युशन एंड काउंटर रिवल्युशन इन जर्मनी* एवं *द क्लास स्ट्रगल इन फ्रांस* में हम दो भिन्न वर्ग संरचनाओं को पाते हैं।

बहरहाल, एक अन्य व्याख्या के अनुसार, उत्पादन साधनों के स्वामित्व के साथ दो वर्ग उभरते हैं– एक वे जो यह स्वामित्व रखते हैं, यथा धनी (मध्यवर्ग/पूँजीपति जो अधिशेष मूल्य को विनियोजित करते हैं) तथा दूसरे वे जो यह स्वामित्व नहीं रखते, अर्थात् निर्धन (सर्वहारा जो केवल अपनी श्रमशक्ति से ही संपन्न होते हैं)। परवर्ती जीवित रहने के लिए प्रायः पूर्ववर्ती की आज्ञा मानता है और इस प्रकार उनका संबंध आधिपत्य एवं अधीनता अर्थात् उत्पीड़क एवं उत्पीड़ित से अभिलक्षित होता है। मध्यवर्ग पूँजीपतियों का वह वर्ग है जो उत्पादन साधनों पर नियंत्रण रखता है। यहाँ 'स्वयं में वर्ग' अवधारणा दृष्टिगत होती है, जिसका अर्थ है कि उत्पादन साधनों से एक समान संबंध रखने वाले सभी व्यक्ति एक वर्ग में समाविष्ट हो जाते हैं; तथा दूसरी अवधारणा 'स्वयं के लिए वर्ग' नज़र आती है, जहाँ किसी वर्ग के सदस्य अपनी शोषण–कारी दशा के प्रति जागरूक होते हैं और क्रांति के माध्यम से इसका समाधान पाने के लिए एक साथ खड़े होते हैं।

अधीनता के संबंधों की रूपरेखा प्रस्तुत करते हुए मार्क्स ने देखा कि मानव समाज के प्रत्येक ऐतिहासिक चरण में, हम दो प्रतिद्वन्द्वी वर्गों की विद्यमानता पाते हैं; अर्थात् प्राचीन समाज में स्वामी और दास, सामंती समाज में ज़मींदार और कृषिदास तथा पूँजीवादी समाज में पूँजीपति और औद्योगिक श्रमिक। तथापि, वे वर्ग को पूँजीवादी समाजों के एक अद्वितीय अभिलक्षण के रूप में देखते हैं क्योंकि यही वह बिंदु है जहाँ शोषण अपने चरम पर पहुँचता है और वर्ग–विवाद एवं वर्ग–संघर्ष द्वारा छेड़ी गई क्रांति के माध्यम से पूँजीवाद को उखाड़ फेंका जाता है। शोषण का कारण होता है– अधिशेष मूल्य के रूप में मुनाफा कमाने की पूँजीपति की उत्कट इच्छा। अंततः उत्पादन की पूँजीवादी रीति का स्थान साम्यवाद ले लेता है, जिसमें निजी सम्पत्ति के साथ–साथ स्वय–अन्यविसंबंध का भी उन्मूलन हो जाता है। वर्ग एवं वर्ग संघर्ष संबंधी मार्क्स की अवधारणा का अध्ययन हम इकाई 3 में करेंगे।

1.5.3 उत्पादन के साधन, संबंध, शक्तियाँ एवं रीतियाँ

'उत्पादन के साधन' से मार्क्स का अभिप्राय उन वस्तुओं से है जो उत्पादन के लिए प्रयोग की जाती हैं ('जैसे– भूमि' कच्चा–माल, प्रौद्योगिकी, आदि)। अब, उन लोगों का एक वर्ग होता है जो उत्पादन साधनों के स्वामी होते हैं, परंतु केवल औज़ारों, यंत्र–समूह, एवं प्रौद्यौगिकी से ही कुछ बना लेना संभव नहीं होता। उत्पादन प्रक्रिया के लिए इन सबको काम में लगाना या लेना पड़ता है।

जब ऐसा होता है तो लोगों को एक–दूसरे से अंतःक्रिया करनी पड़ती है। उत्पादन की दृष्टि से निर्मित सामाजिक संबंध 'उत्पादन संबंध' कहलाते हैं। उत्पादन संबंधों में – उत्पादन साधनों के स्वामियों और श्रमिकों के बीच का संबंध तथा स्वयं श्रमिकों के बीच का संबंध सम्मिलित होता है। स्वामियों एवं श्रमिकों के बीच उत्पादन संबंध प्रभुत्व एवं शोषण से अभिलक्षित होते हैं, जबकि श्रमिकों के बीच ये संबंध सहयोग से अभिलक्षित होते हैं। वस्तु उत्पादन जिन तरीकों से होता है, उन्हें 'उत्पादन शक्तियों' के नाम से जाना जाता है। यह उत्पादन साधनों एवं श्रमशक्ति का संयोजन होता है। सरल शब्दों में, उत्पादन शक्तियों का अर्थ है–वे सभी उत्पादन जो भौतिक उत्पादन की प्रक्रिया में सीधे योगदान देते हैं। मार्क्स के अनुसार, समाज के सामाजिक इतिहास का प्रत्येक चरण इन आधारों पर एक–दूसरे से भिन्न होता है– समाज के सदस्य कैसे, अथवा किन साधनों से, अपनी उत्तरजीविता के लिए भौतिक वस्तुएँ बनाते हैं और इस प्रकार अपनी आवश्यकताएँ पूरी करते हैं। मानव इतिहास में किसी विशिष्ट चरण से संबद्ध उत्पादन की प्रत्येक रीति उत्पादन के अपने विशिष्ट संबंध दर्शाती है। जैसा कि भाग 1.4.2 में स्पष्ट किया गया, मार्क्स ने उत्पादन की चार रीतियों को पहचाना– एशियाई, प्राचीन, सामंती एवं पूँजीवादी। आइए, उत्पादन की प्रत्येक रीति को विस्तार से समझें।

उत्पादन की एशियाई रीति आदिम समुदायों का अभिलक्षण है, जिसमें भूमि का स्वामित्व समूहगत होता है। यहाँ वैयक्तिक 'स्वामित्व' की सार्थकता का अभाव होता है। परिणामतः, सम्पत्ति अथवा निजी सम्पत्ति संबंधी अवधारणा भी नदारद रहती है। इन दोनों के अभाव में, इसे 'वर्ग–विहीन' समाज कहा जाता है।

उत्पादन की प्राचीन रीति में, दासता अर्थात् गुलामी को उत्पादन प्रक्रिया का आधार कहा जाता है। यह वह बिंदु है जहाँ हम मानव इतिहास में पहली बार दो भिन्न और विरोधी वर्ग देखते हैं; अर्थात्– स्वामी और दास। इसका कारण हम बड़े पैमाने पर कृषि व्यवसाय के उदगम को मान सकते हैं। स्वामी से दासों के संबंध को दासता का नितांत सार–तत्व माना जा सकता है क्योंकि यह स्वभावतः शोषणकारी होता है और इसके तहत स्वामी अपने दासों के श्रम को हड़प लेता है।

उत्पादन की सामंतवादी रीति दो परस्पर विरोधी वर्गों से अभिलक्षित होता है; अर्थात्– भूधारक सामंती स्वामी तथा काश्तकार अथवा 'कृषिदास'। चूँकि कृषि दास कानूनन परतंत्र थे, वे सम्पत्ति अधिकारों से वंचित थे। अपनी उत्तरजीविता के लिए वे अपने सामंती स्वामियों की भू–सम्पत्तियों पर कामकाज किया करते थे। सामंती स्वामी अपने कृषि दासों से भू–लगान वसूला करते थे। उत्पादन की पूँजीवादी रीति औद्योगिक युग का अभिलक्षण है। यहाँ दो प्रतिद्वंद्वी समूह दिखाई पड़ते है–पूँजीपति अथवा मध्यवर्ग और कामगार/श्रमिक अथवा सर्वहारा। उत्पादन रीति के रूप में पूँजीवाद सर्वप्रथम यूरोप में दिखाई दिया। यहाँ पूँजी ही उत्पादन का प्रमुख साधन थी। तदंतर विश्व में प्रौद्योगिकी की तीव्र वृद्धि और पूँजीवादी अर्थव्यवथाओं का उदय देखा गया। यहाँ उत्पादन साधन

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

पूर्णतः पूँजीपति के नियंत्रण में रहते हैं जो मुनाफा कमाने के लिए सर्वहारा वर्ग के श्रम का दोहन करता है। मार्क्स की दृष्टि में, पूँजीवाद का स्थान अंततोगत्वा साम्यवाद ने ही लेना है।

1.6 सारांश

इस इकाई मे हमने मार्क्स के लेखों पर अन्य विचारों के मुख्य प्रभावों को देखा और मार्क्स के मुख्य विचारों पर संक्षेप में चर्चा की। हम देख सकते हैं कि मानव समाज के उत्तरोत्तर उद्वविकासवादी चरणों से अभिलक्षित विकास के सतत क्रम स्वरूप इतिहास को समझने संबंधी उनकी अवधारणा काफ़ी हद तक उस समय के विकासवादी विचारों से प्रभावित थी। इसी प्रकार, हीगल कृत आदर्शवाद के द्वंद्व न्याय को उस वक़्त मार्क्स द्वारा किंचित् परिवर्तित कर उलट दिया गया जब उन्होंने भौतिकवाद संबंधी अपनी द्वंद्वन्याय का प्रयोग किया। पक्ष, प्रतिपक्ष एवं सपक्ष संबंधी मुख्य मान्यताएँ वही रहीं मगर उनका अंतर्जात स्वभाव हीगल के विचार की प्रगति से मार्क्स के उत्पादन साधनों की प्रगति तक बदलता है जो कि मानव इतिहास को प्रगति की ओर अग्रसर करता है। प्रयोग–मूल्य, विनिमय–मूल्य एवं अधिशेष मूल्य विषयक मार्क्सवाद लेखों में एडम स्मिथ और डेविड रिकार्डो का प्रभाव देखा जा सकता है। वर्ग और अधीनता के संबंधों के साथ मार्क्स के मुख्य विचारों में उत्पादन साधन, उत्पादन संबंध, उत्पादन रीति एवं उत्पादन शक्तियाँ शामिल की गईं जिन्होंने अंतिम विश्लेषण में पूँजीवाद की छवि प्रस्तुत की। कहने को आवश्यकता नहीं कि अठाहरवीं और उन्नीसवीं शताब्दियों की क्रांतियों के समय एक दार्शनिक एवं अर्थशास्त्री के रूप में मार्क्स के लेख आज भी आधुनिक युग में गुंजायमान हैं।

1.7 संदर्भ

गिड्न्स, एन्थनी (1998), *कैपिटलिज़्म एंड मार्डन सोषल थ्योरीः एन एनालिसिस ऑफ़ द राईटिंग्स ऑफ़ मार्क्स, दर्खाइम एंड मैक्स वैबर*, नई दिल्लीः कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रैस इंडिया प्राइवेट लिमिटेड।

इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय पाठ्यसामग्री (2005), *सोशियोलोजिकल समाजशास्त्रीय सिद्धांत* (ईएसओ 13), नई दिल्लीः इग्नू

बर्लिन, इसिह (1939). *कार्ल मार्क्स, हिज लाइफ एंड एनवायरमेंट, लंदन* थॉर्नटन बटरवर्थ लि.

1.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

i) जॉर्ज विल्हम, फ्रेड्रिक हीगल और लुड़विग फ़ायरबाख।

ii) द्वंद्वन्याय दृष्टिकोण का मुख्य केन्द्रबिंदु इन पर रहा– (क) इन घटकों के बीच संबंध; तथा (ख) सामाजिक संबंधों की समग्रता और उन घटकों की इस समग्रता का संबंध। द्वंद्वात्मक दृष्टिकोण इस बात से भी सरोकार रखता है कि सामाजिक परिघटनाएँ किस प्रकार देश व काल में एक–दूसरे स एक द्वंद्वात्मक संबंध में विद्यमान होती हैं।

बोध प्रश्न 2

i) ऐतिहासिक भौतिकवाद के प्रमुख सिद्धांत हैं– (क) समाज का आर्थिक प्राधार ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण होता है; (ख) अर्थव्यवस्था से समाज में राजनीति और संस्कृति निर्धारण होता है; तथा (ग) विचारों की बजाय, आर्थिक संरचना राजनीतिक एवं विधिक अधिसंरचना का निर्धारित करती है।

ii) राजनीतिक अर्थव्यवस्था स्पष्ट करती है कि किस प्रकार राजनीति और अर्थशास्त्र एक–दूसरे को प्रभावित करते हैं। राजनीतिक अर्थव्यवस्था इस प्रश्न को लेती है– राजनीति और नीतियाँ किस प्रकार आर्थिक परिणामों को प्रभावित करती हैं (उदाहरणार्थ, आर्थिक संवृद्धि, व्यापार, रोज़गार समाज एवं क्षेत्रों के विभिन्न तबकों में व्याप्त आय संबंधी असमानता।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 2 द्वंद्वात्मक भौतिकवाद*

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य
2.1 प्रस्तावना
2.2 द्वंद्ववाद की अवधारणा
2.3 द्वंद्ववाद के नियम
2.3.1 विपरीत की एकता एवं संघर्ष का नियम
2.3.2 निषेध का निषेध नियम
2.3.3 मात्रात्मक से गुणात्मक परिवर्तनों में परिवर्तन का नियम
2.4 द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के नियमों का प्रयोग
2.4.1 आदिम साम्यवादी समाज
2.4.2 दास प्रथावादी समाज
2.4.3 सामंतवादी समाज
2.4.4 पूंजीवादी समाज
2.5 सामाजिक परिवर्तन एवं क्रांति
2.6 सारांश
2.7 संदर्भ
2.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

2.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आपके द्वारा संभव होगा

- द्वंद्ववाद एवं सामाजिक परिवर्तन की मार्क्सवादी अवधारणाओं की विवेचना करना;
- द्वंद्ववाद के नियमों की व्याख्या करना;
- समाजिक परिवर्तन को समझने हेतु द्वंद्ववाद के नियमों का योगदान बताना;
- समाजिक परिवर्तन एवं क्रांति के संदर्भ में मार्क्स के विचारों को प्रस्तुत करना।

2.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने समाज के विकास के इतिहास के बारे में मार्क्सवादी चिन्तन के मौलिक सैद्धांतिक एवं अवधारणात्मक रुप के बारे में जाना। उत्पादन की शक्तियों, उत्पादन के संबंधों तथा उत्पादन के तरीकों के संदर्भ में मानवीय इतिहास की भौतिकवादी, वैज्ञानिक व्याख्या में मार्क्स के विशिष्ट योगदान का अध्ययन करने के पश्चात् द्वंद्ववाद भौतिकवाद पर विचारों को समझना भी आवश्यक है।

प्रस्तुत इकाई के दो प्रमुख उद्देश्य हैं: (i) आपको द्वंदात्मक प्रक्रिया एवं परिवर्तन की महत्वपूर्ण मार्क्सवादी अवधारणाओं से अवगत कराना और (ii) सामाजिक परिवर्तन से संबंधित कार्ल मार्क्स द्वारा प्रदत्त सम्पूर्ण अवधारणात्मक एवं सैद्धांतिक संरचना को संक्षेप

*इग्नू पाठ्यसामग्री से अंगीकृत : *समाजशास्त्रीय सिद्धान्त* (ESO13) की इकाई 9 का नीता माथुर द्वारा संशोधन।

में प्रस्तुत करना। खंड 2.2 और 2.3 में आपको द्वंद्वात्मक अवधारणा से अवगत कराया गया है। इसके साथ–साथ द्वंद्वात्मक भौतिकवाद एवं सामाजिक परिवर्तन की सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य में विवेचना की गई है। खंड 2.4 में सामाजिक परिवर्तन व मार्क्सवादी चिन्तन को एक और दृष्टि से प्रस्तुत किया गया है। यह भाग सामाजिक परिवर्तन एवं उत्पादन की बदलती हुई प्रणालियों के बारे में है। यहां पर समाज में परिवर्तन के ऐतिहासिक द्वंद्वात्मक पक्ष पर प्रकाश डालने पर जोर दिया गया है।

खंड 2.5 में सामाजिक परिवर्तन एवं क्रांति के संदर्भ में मार्क्स के विचारों को संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है।

2.2 द्वंद्ववाद की अवधारणा

द्वंद्वात्मक का अर्थ वाद–संवाद (dialogue) की बौद्धिक विवेचना पद्धति से है। यह तर्कशास्त्र की अवधारणा है। यूनानी दार्शनिक अरस्तू (384–322 ईसा पूर्व) के अनुसार, इसे प्रश्नोत्तर द्वारा तर्क–वितर्क के लिये प्रयुक्त किया जाता है। अरस्तू से पूर्व, एक अन्य यूनानी दार्शनिक प्लेटो (427–397 ईसा पूर्व) ने इस अवधारणा को अपने दार्शनिक विचारों के सन्दर्भ में विकसित किया था। प्लेटो से पूर्व, एक और यूनानी दार्शनिक सुकरात (470–390 ईसा पूर्व) ने इस अवधारणा को सभी विज्ञानों की मूल धारणाओं के परीक्षण हेतु प्रयुक्त किया था। मध्य काल के अंत तक, यह अवधारणा तर्कशास्त्र का एक हिस्सा बनी रही। इस अवधारणा की तर्क वितर्क (reason) की परम्परा के अनुसार जर्मन दार्शनिक इमानुएल कॉंट (1724–1804) ने यूरोप के आधुनिक दर्शन में इसका प्रयोग किया। उसने द्वंद्ववाद का प्रयोग इस बात की विवेचना करने के लिये किया कि आनुभाविक प्रघटनाओं को नियंत्रित करने वाले नियमों से गैर–आनुभाविक वस्तुओं की व्याख्या नहीं की जा सकती है।

द्वंद्ववाद का एक और भी अर्थ है। इसके अनुसार द्वंद्ववाद को एक प्रक्रिया समझा जाता है। इसका तात्पर्य है कि द्वंद्ववाद तर्क वितर्क (reason) की आरोही (ascending) एवं अवरोही (descending) स्वरूपों में प्रक्रिया है। द्वंद्ववाद के आरोही स्वरूप से अध्यात्मिक यथार्थ के अस्तित्व को दर्शाया जा सकता है, उदाहरण के लिये, ईश्वर के स्वरूपों को। द्वंद्ववाद के अवरोही स्वरूप से आनुभाविक प्रघटना जगत में अध्यात्मिक यथार्थ की अभिव्यक्ति की व्याख्या की जा सकती है।

आइए, हम देखें कि कार्ल मार्क्स ने द्वंद्ववाद की अवधारणा का प्रयोग कैसे किया। यहा हमें यह याद रखना होगा कि मार्क्स ने भौतिकवाद की अवधारणा को जर्मन दार्शनिक हीगल के प्रत्ययवादी सिद्धान्तों की आलोचना के आधार पर विकसित किया।

हीगल ने द्वंद्ववाद प्रक्रिया की अवधारणा के तर्क–वितर्क एवं प्रक्रिया – दोनों स्वरूपों को मिलाकर विकसित किया। मौटे तौर पर उसने द्वंद्ववाद को एक तार्किक प्रक्रिया के रुप में प्रयुक्त किया और सूक्ष्म स्तर पर उसने इस प्रक्रिया को तार्किक प्रक्रियाओं की संचालक शक्ति का स्त्रोत माना। हीगल की मान्यता थी कि ईश्वर के बारे में आत्मज्ञान मानवीय ज्ञान के माध्यम से होता है। दूसरे शब्दों में, मानवीय विचारों की अवधारणाएं मानव अस्तित्व के वस्तुपरक स्वरूपों के बराबर होती है तथा इसी के साथ–साथ तर्क मानव प्रकृति के सिद्धांत पर आधारित होता है। हीगल ने यह भी प्रतिपादित किया कि द्वंद्वात्मक प्रक्रिया अधिक सूक्ष्म स्तर पर विपरीत स्थितियों को एकता के संदर्भ में समझने की चेष्टा है। हीगल ने इसे एक ऐसी प्रक्रिया बताया जो अंतर्निहित तत्वों को स्पष्ट

करती है। इस प्रकार, प्रत्येक विकास अथवा परिवर्तन कम विकसित या पूर्व अवस्था का परिणाम है। इस प्रकार से, नया विकास पूर्व अवस्था की परिणति है। अतः एक स्वरूप तथा उससे नये स्परूप बनने की प्रक्रिया के बीच सदैव एक अप्रकट तनाव बना रहता है। हीगल ने इतिहास को स्वतंत्रता की चेतना की प्रगति के रुप में समझा है।

प्रारंभ में मार्क्स हीगल के दर्शन से प्रभावित थे, परन्तु बाद में उन्होंने इसकी प्रत्ययवादी प्रकषति की आलोचना की तथा स्वयं द्वंद्वात्मक भौतिकवाद का प्रतिपादन किया। हीगल द्वारा पदार्थ (matter) के स्थान पर विचारों (ideas) को अधिक महत्व देने की भी मार्क्स ने आलोचना की। उन्होंने कहा कि वैज्ञानिक रुप से वैध द्वंद्वात्मक पद्धति पाने के लिये हीगलवादी द्वंद्ववाद को पूरी तरह से उल्टा करना पड़ेगा। हीगल से अलग हटकर मार्क्स ने कहा कि पदार्थ ही सर्वोपरि है और हीगल की तरह द्वंद्ववाद में विचारों को सर्वोच्च समझना ठीक नहीं है।

2.3 द्वंद्ववाद के नियम

मार्क्स द्वारा विकसित द्वंद्वात्मक भौतिकवाद हीगलवादी द्वंद्ववाद से बिल्कुल विपरीत है। यह प्रत्येक वस्तु की व्याख्या पदार्थ के विरोधाभास के संदर्भ में करता है। द्वंद्वात्मक भौतिकवाद प्राकृतिक एवं सामाजिक परिवर्तन के लिये अमूर्त नियम प्रदान करता है। तत्व मीमांसा (metaphysics) के ठीक विपरीत द्वंद्वात्मक भौतिकवाद की मान्यता है कि प्रकृति में वस्तुएं अंर्तम्बन्धित व अंतनिर्भर होती हैं तथा एक दूसरे के द्वारा निर्धारित की जाती हैं। इसमें प्रकषति को एक एकीकृत समष्टि (whole) माना जाता है। द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के अनुसार परिवर्तन का नियम ही यथार्थ का नियम है। सम्पूर्ण मानवीय जगत और अजैवकीय जगत में निरंतर परिवर्तन होते रहते हैं। वस्तुतः विश्व में कुछ भी शाश्वत रुप में स्थायी नहीं है, अपितु प्रत्येक वस्तु निरंतर परिवर्तन के दौर से गुजर रही है। ये परिवर्तन क्रमिक न होकर यकायक क्रांतिकारी रुप से होते हैं। मार्क्स के सहयोगी एंजल्स ने द्वंद्वात्मक के तीन प्रमुख नियम दिये हैं, जो निम्नलिखित हैं।

2.3.1 विपरीत की एकता एवं संघर्ष का नियम

हमने अभी तक यह अध्ययन किया है कि प्रत्येक वस्तु परिवर्तित होती है और हमने परिवर्तन की प्रकषति एवं दिशा के बारे में भी जाना है। हमें अभी यह जानना बाकी है कि परिवर्तन के पीछे क्या कारण होता है। किसके कारण परिवर्तन घटित होता है? विपरीत की एकता एवं संघर्ष का नियम द्वंद्ववाद का केन्द्रीय पक्ष है। यह नियम भौतिक जगत में विकास तथा शाश्वत परिवर्तन के वास्तविक कारणों अर्थात् स्त्रोतों को उजागर करता है।

इसके अनुसार वस्तुओं या प्रघटनाओं में आंतरिक प्रवृत्तियां (tendencies) तथा शक्तियां (forces) होती हैं जो परस्पर विपरीत होती हैं इन परस्पर विपरीत प्रवृतियों अथवा विरोधाभासों के अभिन्न अंतर्सम्बन्ध विपरीत की एकता के लिये उत्तरदायी होते हैं। विश्व की वस्तुओं एवं प्रघटनाओं का यह विरोधाभास सामान्य व सार्वभौमिक प्रकृति का होता है। विश्व की कोई भी वस्तु अथवा प्रघटना ऐसी नहीं है, जिसे विपरीत में विभक्त न किया जा सके। इन परस्पर विरोधी प्रवृत्तियों अथवा विपरीत में सहअस्तित्व होता है तथा एक के बिना दूसरे के बारे में सोचा भी नहीं जा सकता। फिर भी ये विपरीत शक्तियां किसी भी वस्तु में शांति से सहअस्तित्व में नहीं रह सकतीं। इन विपरीत शक्तियों की परस्पर विरोधी प्रकृति इनमें अनिर्वायतः संघर्ष पैदा करती है। प्राचीन एवं

नवीन, नवोदित एवं पुरातन के मध्य संघर्ष अनिवार्य है। यहाँ यह बात जाननी महत्वपूर्ण है कि विपरीत की एकता संघर्ष की एक आवश्यक दशा है, क्योंकि संघर्ष तब ही घटित होता है, जब किसी एक वस्तु अथवा प्रघटना में विपरीत शक्तियां अस्तित्व में होती हैं। विपरीत का संघर्ष व विरोध ही चेतना एवं पदार्थ के विकास के मुख्य स्त्रोत हैं। विपरीत के संघर्ष से ही विकास होता है। प्रायः इन विरोधी शक्तियों में से एक शक्ति यथास्थिति को बनाये रखना चाहती है और दूसरी शक्ति यथास्थिति में क्रांतिकारी परिवर्तन लाना चाहती है। इस संघर्ष के कारण अनेक मात्रात्मक (quantitative) परिवर्तनों पश्चात जब भी परिपक्व अवस्थाएं अस्तित्व में आती हैं तो एक नई स्थिति, वस्तु प्रघटना या अवस्था या परिवर्तन का जन्म होता है। यह क्रांतिकारी परिवर्तन गुणात्मक (qualitative) परिवर्तन है। इस प्रकार द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के तीन नियमों में तार्किक अंतर्संबंध देखे जा सकते हैं।

उन बाह्य प्रभावों की भूमिका की उपेक्षा करना त्रुटिपूर्ण होगा, जो कि परिवर्तन लाने में सहायक हो सकते हैं अथवा बाधा डाल सकते हैं। सभी प्रकार के परिवर्तनों का स्त्रोत आंतरिक विरोधाभास है। नये विरोधाभासों का प्रादुर्भाव एक नये प्रकार के परिवर्तनों को जन्म देता है जबकि इन विरोधाभाषों की विलुप्ति एक और नये प्रकार के परिवर्तन का कारण बनती है। इस नए परिवर्तन के लिये अन्य विरोधाभास उत्तरदायी होते हैं। विपरीत तत्वों में कभी समभाव नहीं आ पाता है। विपरीत तत्वों का समान प्रभाव अस्थायी व सापेक्षित होता है, जबकि उनके बीच संघर्ष हमेशा चलता रहता है।

निषेध का निषेध नियम तथा मात्रात्मक से गुणात्मक परिवर्तनों में परिवर्तन का नियम (देखिए उपभाग 2.3.2 तथा 2.3.3), ये दोनों नियम विपरीत की एकता व संघर्ष के नियम के विशेष उदाहरण माने जा सकते हैं। प्रस्तुत नियम सभी प्रकार के विकास एवं परिवर्तन के स्त्रोतों को व्यक्त करते हैं।

विपरीत की एकता व संघर्ष के इस अमूर्त नियम को सामाजिक विकास के इतिहास की क्रमिक उत्पादन प्रणाली पर लागू किया जाये तो इसको सरलता से समझा जा सकता है।

2.3.2 निषेध का निषेध नियम

'निषेध' शब्द को दर्शनशास्त्र में सबसे पहले हीगल ने प्रयुक्त किया, परन्तु उन्होंने इसका प्रत्ययवादी अर्थात् आदर्शवादी अर्थ लिया। हीगल की मान्यता थी कि निषेध की अवधारणा विचार तथा चिन्तन में उपजती है। मार्क्स ने हीगल की आलोचना की तथा निषेध की भौतिकवादी व्याख्या दी उन्होंने बताया कि निषेध यथार्थ के विकास का एक अभिन्न अंग है। मार्क्स ने लिखा कि किसी भी क्षेत्र में कोई भी तत्व अपने पूर्व के अस्तित्व के स्वरुप को नकारे बिना अथवा निषेध किये बिना विकसित नहीं हो सकता है।

आइये, हम इसको उदाहरण के द्वारा और अधिक स्पष्ट रुप से समझें। पृथ्वी की ऊपरी सतह अनेक भूगर्भीय युगों से गुजर चुकी है। प्रत्येक नया युग पिछले युग के आधार पर अस्तित्व में आता है और इस प्रकार पुराने युग के निषेध का प्रतिनिधित्व करता है। प्राणी जगत में भी प्राणियों की प्रत्येक नई किस्म अपनी से पुरानी किस्म के आधार पर पैदा होती है और साथ ही साथ उसके निषेध का प्रतिनिधित्व भी करती है। इसी प्रकार समाज का इतिहास भी प्राचीन सामाजिक व्यवस्था के नई व्यवस्था द्वारा निषेधों की एक

श्रृंखला है, जैसा कि रेमण्ड आरों (1965) ने कहा है कि पूंजीवाद सामन्तवादी समाज का निषेध है तथा समाजवाद पूंजीवाद का निषेध होगा अर्थात् समाजवाद निषेध का निषेध है। ज्ञान एवं विज्ञान के क्षेत्र में प्रत्येक नया वैज्ञानिक सिद्धान्त प्राचीन सिद्धांतों का निषेध करता है। उदाहरण के तौर पर, बोन (Bohn) का परमाणु सिद्धांत डाल्टन (Dalton) के अणु सिद्धांत का निषेध है अथवा इसी प्रकार डार्विन के सिद्धांत ने अपने से पूर्व प्रचलित मानवीय उद्विकास के बारे में सभी सिद्धांतों का निषेध किया।

यहाँ एक बात ध्यान में रखने योग्य है कि निषेध किसी वस्तु अथवा प्रघटना में बाहर से प्रविष्ट नहीं करता है, अपितु यह उस वस्तु अथवा प्रघटना के आंतरिक विकास का ही परिणाम होता है। वस्तुएं अथवा प्रघटनाएं स्वयं में निहित आन्तरिक विरोधाभासों के आधार पर विकसित होती हैं। वे अपने ही विनाश की दशायें उत्पन्न करती हैं ताकि एक नई उच्चतर गुणात्मक स्थिति में परिवर्तित हो सकें। निषेध का अभिप्रायः वस्तुओं और प्रघटनाओं के आंतरिक विरोधाभासों, स्वविकास तथा स्वतः परिवर्तन के माध्यम से पुरानी स्थिति को नई स्थिति में बदलना है। इस प्रकार समाजवाद पूंजीवाद का स्थान इसलिये लेता है क्योंकि यह पूँजीवाद व्यवस्था के आंतरिक विरोधाभासों का समाधान करता है।

अतः द्वंद्वात्मक प्रक्रियापरक निषेध एक ऐसे तथ्य से उभरता है, जिसमें कि किसी भी वस्तु की निषेधित वस्तु का कुछ भाग लुप्त हो जाता है। कुछ भाग नई व्यवस्था का भाग बन जाता है यद्यपि यह परिवर्तित स्वरुप में होता है और इस नई व्यवस्था में कुछ विशुद्ध रुप से नया जुड़ जाता है। इस प्रकार निषेध की मार्क्सवादी व्याख्या का प्रमुख गुण यह है कि यह निरन्तरता (continuity) को मान्यता प्रदान करती है जो कि विकास में नये और पुराने के मध्य एक कड़ी का कार्य करती है। हमें यह बात भी ध्यान रखनी चाहिए कि नई अवस्था कभी भी पुरानी अवस्था को पूरी तरह से नहीं बदलती है। यह पुरानी अवस्था में से कुछ विशिष्ट तत्वों अथवा पक्षों को अपने में समेट लेती है और यह क्रिया भी इसमें यान्त्रिक रुप से घटित नहीं होती, अपितु अपनी स्वयं की प्रकृति के अनुरुप नई अवस्था प्राचनी तत्वों को अपने आप में आत्मसात तथा परिवर्तित करती है।

उदाहरण के लिए, भारत में उपनिवेशवाद को उखाड़ फेंकने के बाद हमने एक नये राष्ट्र की रचना प्रारंभ की। इस प्रक्रिया में हमने राष्ट्रीय विकास को अवरुद्ध करने वाले सभी उत्पीड़क तत्वों और संस्थाओं को हटाने का प्रयास किया, फिर भी हमने उपनिवेशवाद द्वारा पीछे छोड़े गये शैक्षणिक, वैधानिक तथा प्रशासन तंत्रीय ढाँचे तथा यातायात एवं संचार की आधुनिक अधोसंरचना को अपना लिया व उसको बनाये रखा।

इन्हीं कारणों से विकास की अवस्थाओं में क्रमिक परिवर्तन प्रगतिशील होता है। यद्यपि कोई भी अवस्था पूर्ण रुप से पुर्नघटित नहीं होती, फिर भी गत अवस्थाओं की कुछ विशेषताएं बाद की अवस्थाओं में रुपांतरित स्वरुप में घटित होती हैं। इस प्रकार प्राचीन तो नष्ट हो जाता है और नया उदित होता है। यह विकास की एक अवस्था मात्र है, अन्तिम स्थिति नहीं। क्योंकि विकास कभी नहीं रुकता। कोई भी नई अवस्था सदैव नई नहीं रहती। विकास की प्रक्रिया में और अधिक नई तथा प्रगतिशील अवस्था के लिये दशायें बनने लगती हैं। जब नई दशायें परिपक्व हो जाती हैं तो एक बार पुनः निषेध घटित होता है और इसी को निषेध का निषेध कहते हैं। इस प्रक्रिया में पहले निषेध के बाद वाला निषेध और भी उच्चतर स्थिति का होता है और यह प्रक्रिया अनवरत रुप से चलती रहती है। इस प्रकार विकास की प्रक्रिया में असंख्य क्रमिक निषेध घटित होते हैं, जिसके द्वारा पुरानी स्थितियों अथवा वस्तुओं का स्थान नई वस्तुयें लेती हैं।

2.3.3 मात्रात्मक से गुणात्मक परिवर्तनों में परिवर्तन का नियम

प्रकृति में प्रत्येक वस्तु निरंतर गति और परिवर्तन की स्थिति में है। किसी भी नियम समय पर कुछ वस्तुएं अस्तित्व में आ रही हैं, कुछ वस्तुएं विकसित हो रही हैं तथा कुछ वस्तुएं क्षरित हो रही हैं अथवा उनका अस्तित्व समाप्त हो रहा है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि प्रत्येक वस्तु निरंतर परिवर्तनशील है। जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि मार्क्स की मान्यता थी कि यथार्थ का नियम परिवर्तन का नियम है। अब परिवर्तन की प्रकृति के बारे में प्रश्न उठता है कि यह परिवर्तन किस प्रकार का परिवर्तन है? प्रस्तुत नियम इस विशिष्ट समस्या का समाधान करता है। इस नियम के अनुसार, परिवर्तन की प्रक्रिया सरल अथवा क्रमिक नहीं होती, अपितु यह अनेक मात्रात्मक परिवर्तनों का परिणाम होती है, जो कि अंततः परिपक्व दशाओं की उपलब्धि होने पर किसी भी निश्चिम समय पर अमूर्त गुणात्मक परिवर्तनों से गुजरती है। घटनाओं की पुनरावृति कभी नहीं होती। यह परिवर्तन सदैव निम्न से उच्चतर की ओर, सरल से जटिल की ओर, तथा यथार्थ के समांग (homogeneous) स्तर से विषमांग (heterogenous) स्तरों की ओर होता है।

आइए, अब हम मात्रात्मक और गुणात्मक परिवर्तनों को विस्तार से समझें, किसी भी नई अवस्था के प्रादुर्भाव या जन्म तथा किसी भी प्राचीन अथवा पुरानी अवस्था की समाप्ति या विलुप्ति को तार्किक एवं दार्शनिक रुप से गुणात्मक परिवर्तन कहा जा सकता है। जबकि अन्य सभी परिवर्तन जिनमें किसी भी वस्तु के विभिन्न अंग अथवा पक्ष पुनर्व्यवस्थित हो जाते हैं, बढ़ जाते हैं, अथवा घट जाते हैं, परंतु उस वस्तु की मूल पहचान नहीं बदलती, तो उस स्थिति को मात्रात्मक परिवर्तन कहा जा सकता है। इसको और अधिक सरल रुप से समझने के लिये, यह कहा जा सकता है कि गुणात्मक परिवर्तनों के दो स्वरुप होते हैंः (i) कोई वस्तु जिसका अस्तित्व नहीं था, लेकिन अब वह अस्तित्व में आ गई है, तथा (ii) कोई वस्तु जो पहले अस्तित्व में थी, लेकिन अब उसका अस्तित्व समाप्त हो गया। दूसरी ओर मात्रात्मक परिवर्तन असीमित रूप से व्यापक होते हैं। उदाहरणार्थ छोटा बड़ा, कम अधिक, कभी कभी, तेज धीमा, गर्म ठण्डा, भारी हल्का, बेहतर घटिया, समृद्ध निर्धन, आदि।

वस्तुतः प्रकृति की प्रत्येक वस्तु में मात्रात्मक परिवर्तन निरंतर घटित होते रहते हैं और प्रत्येक प्रक्रिया की प्रकृति द्वारा निर्धारित सीमा तक पहुंच जाते हैं तो इनमें अपरिहार्य महापरिवर्तन होते हैं। जब निरंतर परिवर्तन एक विशिष्ट सीमा तक पहुंच जाता है, जिसके परे और अधिक मात्रात्मक परिवर्तन संभव नहीं है। परिपक्वता की स्थिति को दर्शनशास्त्र में मापात्मकता की सीमा कहते हैं। यह महापरिवर्तन गुणात्मक परिवर्तन है। इसका एक ठोस उदाहरण दिया जा सकता है, भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन स्वतंत्रता प्राप्ति के लिये एक शताब्दी से अधिक समय तक चलता रहा तथा इसमें निरंतर मात्रात्मक परिवर्तन आते रहे और जब वह अपनी सीमा पर पहुंच गया तो 15 अगस्त 1947 की मध्य रात्रि को महापरिवर्तन घटित हुआ और भारत एक स्वतंत्र राष्ट्र बन गया। उपनिवेशवाद से मुक्ति गुणात्मक परिवर्तन था। इसी प्रकार व्यक्ति में आयु बढ़ने की प्रक्रिया एक क्षण के लिये भी नहीं रुकती। व्यक्ति प्रति क्षण उम्र में बढ़ते रहते हैं। अर्थात् लोग निरंतर मात्रात्मक परिवर्तनों से गुजरते रहते हैं और जब वे प्रकृति द्वारा निर्धारित सीमा पर पहुंच जाते हैं तो उनमें गुणात्मक परिवर्तन आता है, अर्थात मृत्यु हो जाती है। इसी उदाहरण को किसी शिशु के जन्म पर भी लागू किया जा सकता है। गर्भधारण के दिन से ही पूरे गर्भकाल में गर्भस्थ शिशु में मात्रात्मक परिवर्तन होते रहते हैं, परन्तु

गुणात्मक परिवर्तन उसी क्षण होता है, जब शिशु का इस विश्व में आगमन होता है, अर्थात् उसका जन्म होता है।

अतः यहाँ पर मात्रात्मक परिवर्तनों से गुणात्मक परिवर्तनों में परिवर्तन के नियम अथवा गुणात्मक परिवर्तनों से मात्रात्मक परिवर्तनों के नियम अथवा इस स्तर का अर्थ परिपक्वता अथवा मापात्मकता की स्थिति प्राप्त करने तक निरंतर मात्रात्मक परिवर्तन से है, जिनके कारण यकायक गुणात्मक परिवर्तन होते हैं, जो कि आगे होने वाले निरंतर मात्रात्मक परिवर्तनों को निर्धारित करते हैं। आइए, अब हम देखें कि मार्क्स ने मानव इतिहास में सामाजिक परिवर्तन को समझने के लिए द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के नियमों का प्रयोग कैसे किया। लेकिन पहले बोध प्रश्न 1 को जरूर पूरा कर लें ताकि अभी तक इस इकाई में पढ़ी पाठ्य सामग्री को दुहराया जा सके।

बोध प्रश्न 1

i) द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के नियमों के नाम लिखिये।

....

....

....

....

ii) दो पंक्तियों में मात्रात्मक परिवर्तन की परिभाषा दीजिये।

....

....

....

....

iii) गुणात्मक परिवर्तन को तीन पक्तियों में परिभाषित कीजिये।

....

....

....

....

2.4 द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के नियमों का प्रयोग

प्रकृति, विश्व एवं समाज पर समान रुप से द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के सिद्धांत अथवा नियम लागू होते हैं। अब इन नियमों को समाज के इतिहास पर लागू किया जाता है तो ये ऐतिहासिक भौतिकवाद का रुप ले लेते हैं। जैसा कि आपने पूर्ववर्ती इकाई में अध्ययन किया है कि मार्क्स के अनुसार, मानवीय समाज चार प्रमुख उत्पादन प्रणालियों से होकर गुजरा है, जिनके नाम एशियाटिक, प्राचीन, सामंतवादी एवं पूंजीवादी प्रणाली

हैं। अंततः मार्क्सवादी सिद्धांत की भविष्यवाणी के अनुसार समाज के ये क्रमिक स्वरुप साम्यवाद की अवस्था तक पहुंचेगे।

यहां हमें यह देखना है कि उत्पादन के क्रमिक तरीकों, स्वरूपों एवं सामाजिक परिवर्तन को समझने के लिये द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के नियमों को किस प्रकार प्रयुक्त किया जाता है।

2.4.1 आदिम साम्यवादी समाज

आदिम साम्यवादी समाज उत्पादन प्रणाली का सर्वप्रथम, सरलतम तथा निम्नतम स्वरुप था। इस उत्पादन प्रणाली के काल में नये तथा उन्नत किस्म के औजारों जैसे कि तीर–कमान आदि का विकास हुआ तथा मनुष्य ने आग का प्रयोग करना सीखा। द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के नियमों के संदर्भ में, ये परिवर्तन मात्रात्मक परिवर्तन के उदाहरण थे। कृषि एवं पशुपालन की शुरूआत भी इसी प्रकार के परिवर्तनों के उदाहरण थे। उत्पादन शक्तियां अत्यधिक निम्न स्तर की थी तथा उत्पादन अनुरूप ही संबंध थे। समाज में उत्पादन के साधनों पर समान व सामुदायिक स्वामित्व था। अतः उत्पादन के संबंध सहकारिता और पर स्तर सहायता पर आधारित थे। ये संबंध इस तथ्य से निर्धारित होते थे कि प्रकृति की महाकाय शक्तियों का मुकाबला आदिम व्यक्ति अपने आदिम औजारों के साथ सामूहिक रुप से ही कर सकता था।

आदिम समाज में भी उत्पादक शक्तियाँ निरंतर विकसित होती रहीं। नये औजार बनाए गये और कार्य कौशल को धीरे–धीरे बढ़ाया गया। इस समाज का सर्वाधिक महत्वपूर्ण परिवर्तन था, धातु के औजार बनाना। उत्पादकता के विकास के साथ–साथ समाज की सामुदायिक संरचना टूट कर परिवारों के रुप में फैलने लगी। ऐसी स्थिति में निजी सम्पति की अवधारणा विकसित हुई तथा धीरे–धीरे उत्पादन के साधनों पर परिवारों का स्वामित्व होने लगा। यहां पर उत्पादन के सामुदायिक संबंधों तथा शोषक वर्ग के संभावित स्वरूपों के मध्य विरोधाभास के कारण गुणात्मक परिवर्तन हुआ, अर्थात् आदिम साम्यवादी उत्पादन प्रणाली का प्राचीन उत्पादन प्रणाली में परिवर्तन हुआ। इस व्यवस्था में विपरीत शक्तियों के मध्य संघर्ष था जिसके परिणामस्वरूप आदिम साम्यवादी व्यवस्था का निषेध हुआ। इसके फलस्वरूप दास प्रथा की एक नई अवस्था अस्तित्व में आई। दास प्रथा को आदिम साम्यवादी व्यवस्था के निषेध के रुप में वर्णित किया जा सकता है।

2.4.2 दास प्रथावादी समाज

समाज के इस स्वरुप में आदिम समानता का स्थान सामाजिक असमानता ने ले लिया तथा दासों और मालिकों के वर्गों का उदय हुआ। उत्पादन शक्तियों में और अधिक मात्रात्मक परिवर्तन हुए। दास प्रथावादी समाज में उत्पादन के संबंध मालिकों के सम्पूर्ण स्वामित्व पर आधारित थे। मालिकों का उत्पादन के साधनों, दासों तथा उनके द्वारा किए गए उत्पादन पर स्वामित्व होता था।

इस समाज में मालिक और दासों के मध्य विरोध मौजूद था। जब इन विरोधाभासों के मध्य संघर्ष परिपक्व दशाओं तक पहुंच गया तो समाज में गुणात्मक परिवर्तन हुआ। अर्थात् दास प्रथावादी समाज का निषेध हुआ, जिसके फलस्वरुप यह समाज, सामन्तवादी समाज में बदल गया। विपरीतों के संघर्ष अर्थात् मालिक और दासों के बीच संघर्ष के कारण हिंसक दास क्रांतियां हुई, यह दास प्रथावादी समाज का निषेध था। अतः

सामंतवादी व्यवस्था को निषेध का निषेध कहा जा सकता है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि यहां पर सामंतवादी समाज को दास प्रथावादी समाज के निषेध के उदाहरण के रुप में देखा जा सकता है, जो कि स्वयं आदिम साम्यवादी समाज का निषेध है।

2.4.3 सामंतवादी समाज

दास प्रथा पहली अवस्था थी, जिसमें मालिक वर्ग द्वारा दास वर्ग के शोषण तथा आधिपत्य पर उत्पादन के संबंध आधारित थे। यह वह अवस्था थी, जहां से वर्ग असमानता और वर्ग संघर्ष का इतिहास शुरू हुआ है। पूर्व अवस्था की तुलना में, इस अवस्था में ही उत्पादन के संबंधों में मौलिक गुणात्मक अंतर आये। सामंतवादी अवस्था के दौरान उत्पादन की शक्तियों में तीव्र मुखोत्मक परिवर्तन हुये, जिनके अंतर्गत पहली बार ऊर्जा के, जल तथा वायु जैसे अजैवकीय साधनों का प्रयोग हुआ। इन उत्पादक शक्तियों के विकास में सामंतवादी उत्पादन के संबंधों से सहायता मिली। सामंतवादी भूपतियों ने भूमिहीन किसानों को उत्पीड़ित एवं शोषित किया। कालांतर में नगरों का विकास हुआ। इस अवस्था में व्यापार व वाणिज्य तथा उत्पादन भी बढ़ा। ऐसी स्थिति में सामंतवादी जागीरों से अनेक भूमिहीन किसान नवविकसित नगरों में भाग गये ताकि वे वहां व्यापार कर सकें। सामंतवादी व्यवस्थायें विपरीतों का संघर्ष, (अर्थात् भूमिहीन किसानों और सामंतवादी भूपतियों के बीच संघर्ष) अपनी परिपक्वता पर पहुंच गया। सामंतवादी व्यवस्था का पतन हुआ तथा इसका निषेध पूंजीवादी व्यवस्था थी।

2.4.4 पूंजीवादी समाज

निजी पूंजीवादी स्वामित्व पर आधारित पूंजीवादी उत्पादन संबंधों ने उत्पादक शक्तियों की अत्यधिक तेज प्रगति में सहायता दी। उत्पादक शक्तियों के इस तीव्र विकास के बाद उत्पादन के पूंजीवादी संबंध इन शक्तियों के अनुरुप नहीं रह गये थे। धीरे–धीरे ये संबंध शक्तियों के विकास में बाधा बन गए। पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली का सर्वाधिक महत्वपूर्ण विरोधाभास उत्पादन के सामाजिक स्वरुप तथा स्वायतीकरण के निजी पूंजीवादी स्वरुप में निहित है। पूंजीवादी समाज में उत्पादन का स्पष्ट सामाजिक स्वरुप होता है। विशालकाय फैक्ट्रियों के लाखों श्रमिक एक साथ मिलकर काम करते हैं तथा सामाजिक उत्पादन में भाग लेते हैं, जबकि उत्पादन के साधनों के स्वामियों का एक छोटा सा समूह उनके श्रमिक लाभ हड़प लेता है। यह पूंजीवाद का मूलभूत आर्थिक विरोधाभास है। ये विरोधाभास अथवा विपरीतों के संघर्ष, आर्थिक संकट और बेरोजगारी को जन्म देते हैं। यह स्थिति पूंजीवादी और सर्वहारा वर्गों के बीच जबरदस्त वर्ग संघर्ष का कारण बनती है, अर्थात् दूसरे शब्दों में मात्रात्मक परिवर्तनों का कारण बनती है। यह श्रमिक वर्ग एक सामाजवादी क्रांति लाएगा। मार्क्स के अनुसार, यह क्रांति पूंजीवादी उत्पादन के संबंधों को समाप्त कर देगी तथा एक नया गुणात्मक परिवर्तन लायेगी अर्थात् साम्यवादी सामाजिक–आर्थिक संरचना स्थापित होगी।

जैसे कि हमने पहले देखा नई साम्यवादी सामाजिक–आर्थिक संरचना समाजवाद एवं साम्यवाद की दो अवस्थाओं से गुजरकर विकसित हुई है। समाजवाद में उत्पादन के साधनों का निजी स्वामित्व समाप्त हो जाता है और साथ ही साथ सभी प्रकार के असमानता और उत्पीड़न के स्वरुप और शोषण भी समाप्त हो जाते हैं। इसमें उत्पादन के साधनों का सार्वजनिक स्वामित्व होता है। इस प्रकार का समाज वर्गविहीन होता है। ऐसे समाज में सर्वहारा वर्ग सामूहिक रुप से उत्पादन के साधनों का स्वामी होगा तथा समाज के सदस्यों की आवश्यकता के अनुसार उत्पादन वितरित होगा। यह अवस्था

सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व (Dictatorship of proletariat) की अवस्था है जो कि बाद में राज्य व्यवस्था को भी समाप्त करके राज्यविहीन समाज की स्थापना करेगी। राज्यविहीन समाज की यह अवस्था साम्यवाद में संभव होगी। जहां कि वाद–संवाद प्रक्रिया अन्ततः समाप्त हो जाएगी और एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था की स्थापना होगी जो किसी भी प्रकार के विरोधाभास से मुक्त होगी। लेकिन द्वंद्ववाद के नियमों के अनुसार विरोधाभास बने रहेंगे, क्योंकि ये विकास के मूल आधार है। साम्यवाद के अंतर्गत मानव तथा प्रकृति के बीच विरोधाभास उत्पन्न होंगे। जैसा कि आदिम साम्यवाद में होता था। वर्तमान स्थिति में अंतर केवल इतना है कि उच्च तकनीकी से प्रकृति का अधिक प्रभावशाली तरीके से शोषण किया जाएगा। इस प्रकार हमने देखा कि द्वंद्ववाद के ये तीन नियम मार्क्स द्वारा दी गई समाज के इतिहास की व्याख्या में क्या भूमिका निभाते हैं।

बोध प्रश्न 2

i) उत्पादन की चार प्रणालियों के नाम बताइये।

अ) ब)

स) द)

ii) वर्ग संघर्ष चरमोत्कर्ष पर पहुंचकर किस अवस्था में बदलता है?

अ) क्रांति ब) दास प्रथा

स) बुर्जुआ द) सर्वहारा वर्ग (Proletariat)

iii) पूंजीवाद उत्पादन प्रणाली का मुख्य विरोधाभास क्या है?

....

....

....

....

2.5 सामाजिक परिवर्तन एवं क्रांति

आईये, अब हम सामाजिक परिवर्तन एवं क्रांति पर मार्क्स के विचारों की विवेचना करें। जर्मन *आइडियोलॉजी* (1845–46) में मार्क्स और एंजल्स दोनों ने ही इतिहास को एक नई परिकल्पना दी। इसमें उत्पादन प्रणाली पर आधारित क्रमिक ऐतिहासिक अवस्थाओं के बारे में प्रमुख विचार दिये गये हैं। मार्क्स तथा एंजल्स ने एक अवस्था से दूसरी अवस्था में परिवर्तन को क्रांति की अवस्था माना है जो प्राचीन संस्थाओं और नई उत्पादक शक्तियों के बीच संघर्ष के कारण हुई बाद में मार्क्स और एंजल्स दोनों ने ब्रिटिश, फ्रांसिसी तथा अमरीकन क्रांतियों पर अधिक ध्यान दिया और उनका गहन अध्ययन किया। उन्होंने इन क्रांतियों पर अधिक ध्यान दिया और उनका गहन अध्ययन किया। उन्होंनें इन क्रांतियों को बुर्जुआ क्रांति कहा। बुर्जुआ क्रांति की मार्क्स की परिकल्पना ने यूरोप और अमरीका में सामाजिक परिवर्तन के अध्ययन के लिये हमें एक परिप्रेक्ष्य प्रदान किया। सामाजिक परिवर्तन पर विद्वानों को और आगे शोध करने के लिये

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

इस परिप्रेक्ष्य ने प्रेरणा दी। मार्क्स ने एक अन्य प्रकार की क्रांति की चर्चा की। यह क्रांति साम्यवाद से संबंधित थी। मार्क्स ने साम्यवाद को पूंजीवाद के बाद की अवस्था माना है। मार्क्स के अनुसार, साम्यवाद सभी प्रकार के वर्ग विभाजनों को समाप्त कर देगा, इस प्रकार नैतिक तथा सामाजिक परिवर्तन के लिये एक नई शुरूआत करेगा। भावी समाज के बारे में मार्क्स और एंजल्स दोनों इसी प्रकार की छवि रखते थे।

समाजवादी क्रांति की मार्क्स की अवधारणा पूंजीवाद से समाजवाद में परिवर्तन को मानकर चलती है। वह बुर्जुआ क्रांति की व्याख्या कुलीनतंत्र (aristocracy) की पराजय के रुप में करता है। इसके अनुसार यह पराजय पूंजीवाद के चरम सीमा पर पहुंचने के बाद होती है। दूसरी ओर, बुर्जुआ वर्ग की पराजय पूंजीवाद से समाजवाद में क्रांतिकारी परिवर्तन की पहली अवस्था है। मार्क्स के अनुसार क्रांति की इस समाजवादी अवस्था में वर्ग, श्रमिक व्यावसायिक विभाजन तथा बाजार अर्थव्यवस्था बने रहेंगे। प्रत्येक की आवश्यकताओं के अनुसार वस्तुओं का वितरण क्रांति की उच्चतर अवस्था में ही संभव होगा। यह अवस्था साम्यवाद की अवस्था होगी। अतः मार्क्स के अनुसार साम्यवाद तक का परिवर्तन कई चरणों में से गुजर कर आता है तथा यह सम्पूर्ण उत्पादन प्रणाली में क्रांतिकारी परिवर्तन लाता है।

वस्तुतः मार्क्स ने वर्ग विरोध का चरमोत्कर्ष पूंजीवाद में ही माना है क्योंकि उत्पादन की नई शक्तियां उत्पादन संबंधों के अनुरूप नहीं होती। उत्पादन के वितरण के स्तर में दोनों वर्गों के मध्य खाई बढ़ती जाती है। इसके फलस्वरूप सर्वहारा वर्ग अपने वर्ग हितों के प्रति अत्यधिक जागरूक तथा गहन रूप से अलग–थलग (alienated) महसूस करता है। पूंजीवाद में उत्पादन की नई शक्तियाँ वृहत् स्तरीय उत्पादन में सक्षम होती हैं तथा इसके कारण बुर्जुआ वर्ग की समृद्धि बढ़ जाती है। लेकिन इससे सर्वहारा वर्ग की दशा में कोई अन्तर नहीं होता और सर्वहारा वर्ग निर्धनता और तंगहाली में गुजर–बसर करता रहता है। इसके कारण वर्ग चेतना में वृद्धि होती है तथा समाजवादी क्रांति की दषाएं परिपक्व हो जाती हैं। मार्क्स के अनुसार, समाजवादी क्रांति विगत काल की सभी क्रांतियों से गुणात्मक रूप से भिन्न होगी। क्योंकि शोषण और असमानता के इतिहास के प्रारंभ होने के बाद यह पहला अवसर होगा जब कि समाज में एक वर्गविहीन स्थिति आयेगी और समाज के सभी सदस्यों के लिये आषा का संचार करेगी।

2.6 सारांश

इस खंड की प्रस्तुत अंतिम इकाई में हमने मार्क्स के द्वंद्वात्मक सामाजिक परिवर्तन के गंभीर दार्शनिक योगदान का अध्ययन किया। सर्वप्रथम आपको द्वंद्ववाद अवधारणा से अवगत कराया गया, तत्पश्चात् द्वंद्ववाद एवं परिवर्तन के मौलिक नियम बताये गये। तदुपरांत समाज में क्रमिक उत्पादन प्रणालियों व सामाजिक परिवर्तन की विवेचना की गई। इस इकाई में हमने कार्ल मार्क्स द्वारा दिये गये द्वंद्ववाद के सिद्धांतों के संदर्भ में क्रमिक सामाजिक अवस्थाओं अथवा उत्पादन प्रणालियों का अध्ययन किया। अन्त में हमने क्रांति एवं सामाजिक परिवर्तन पर मार्क्स के विचारों की विवेचना की।

2.7 संदर्भ

इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय पाठ्यसामग्री (2005). *समाजशास्त्रीय सिद्धान्त* (ESO 13), नई दिल्लीः इग्नू

मार्क्स, कार्ल एण्ड एंजल्स एफ, (मैनुस्क्रिप्ट 1845–46) (1937) द *जर्मन आईडियोलॉजी* हिस्टोरिश (क्रिटिश) गेजाक्ट आऊसगाबे (ऐतिहासिक आलोचनात्मक संपूर्ण संस्करण)

2.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

i) मात्रात्मक से गुणात्मक परिवर्तनों में परिवर्तन का नियम, निषेध का निषेध नियम, विपरीत की एकता व संघर्ष का नियम।

ii) किसी भी वस्तु में ऐसा लघु अथवा वृहतम् परिवर्तन जिसमें कि वस्तु की पहचान परिवर्तित नहीं होती।

iii) नये का प्रादुर्भाव या प्राचीन की विलुप्ति गुणात्मक परिवर्तन है।

बोध प्रश्न 2

i) अ) एशियाटिक उत्पादन प्रणाली

ब) प्राचीन उत्पादन प्रणाली

स) सामंतवादी उत्पादन प्रणाली

द) पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली

ii) अ)

iii) पूँजीवाद उत्पादन प्रणाली का सर्वाधिक महत्वपूर्ण विरोधाभास उत्पादन के सामाजिक स्वरूप तथा स्वायतीकरण के निजी पूंजीवाद स्वरूप में निहित है।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 3 वर्ग एवं वर्ग संघर्ष*

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 वर्ग संरचना

3.2.1 वर्ग निर्धारण के प्रमुख आधार

3.2.2 इतिहास में समाजों का वर्गीकरण एवं वर्गों का उदय

3.2.3 पूँजीवाद के अन्तर्गत वर्ग संघर्ष की तीव्रता

3.3 वर्ग संघर्ष एवं क्रांति

3.4 मार्क्स की 'अलगाव' की अवधारणा

3.5 सारांश

3.6 संदर्भ

3.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

3.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपके द्वारा संभव होगा

- वर्ग की अवधारणा की व्याख्या करना
- वर्ग संरचना हेतु विभिन्न आधारों को वर्णित करना
- वर्ग संघर्ष अथवा उत्पादन के तरीकों में परिवर्तन के कारण समाज के इतिहास की विभिन्न अवस्थाओं को समझना
- सामाजिक क्रांति क्या है तथा इतिहास में यह घटित कैसे होगी इसकी व्याख्या करना, तथा
- मार्क्स की ''अलगाव'' की अवधारणा को समझना।

3.1 प्रस्तावना

इस इकाई में हमने मार्क्स द्वारा प्रयुक्त वर्ग की अवधारणा पर ध्यान केन्द्रित किया है। हमने यहां वर्ग को परिभाषित किया है और इसके साथ साथ यह बताया है कि किन किन स्थितियों में किन आधारों पर किसी जनसमूह को वर्ग कहा जाता है। यहाँ इस पर भी चर्चा की जाएगी कि विभिन्न वर्गों के मध्य संघर्ष क्यों और कैसे होता है। यह समझने की कोशिश की जाएगी कि वर्ग संघर्षों का समाज के ऐतिहासिक विकास पर क्या प्रभाव होता है।

इस इकाई में समाज के इतिहास में वर्ग संघर्ष और उनके आधार पर किये गये समाज के वर्गीकरण का विवरण किया गया है। पूँजीवाद व्यवस्था के अन्तर्गत वर्ग संघर्ष किस प्रकार बढ़ता जाता है, इसकी विवेचना की है। हमने वर्ग तथा वर्ग संघर्ष, वर्ग संघर्ष एवं

*इग्नू पाठ्यसामग्री से अंगीकृत : *समाजशास्त्रीय सिद्धान्त* (ESO13) की इकाई 8 का नीता माथुर द्वारा संशोधन।

क्रांति की चर्चा के उपरान्त मार्क्स की अलगाव की अवधारणा पर आपका ध्यान केन्द्रित किया है।

3.2 वर्ग संरचना

अंग्रेजी की शब्द 'क्लास' (class) अर्थात् वर्ग का उद्भव लैटिन शब्द 'क्लासिस' (classis) से हुआ है। 'क्लासिस' शब्द का प्रयोग व्यक्तियों के सशस्त्र समूह के लिये किया जाता था। प्रसिद्ध रोमन राजा, सर्वियस टुलियस (678–534 ईसा पूर्व) के शासन में रोमन समाज सम्पत्ति के आधार पर पाँच वर्गों में विभक्त था। आगे चलकर वर्ग शब्द का प्रयोग मानव समाज के वृहत् समूहों के लिए किया जाने लगा।

मार्क्स के अनुसार वर्ग पूँजीवादी समाज की एक बेजोड़ विशेषता है। यही कारण था कि मार्क्स ने पूंजीवाद समाज के अलावा किसी अन्य तरह के समाज में वर्ग संरचना तथा वर्ग संबंधों का अध्ययन नहीं किया।

वस्तुतः समाजशास्त्र में मार्क्स के योगदान को वर्ग संघर्ष का समाजशास्त्र कहा जा सकता है। इसका अर्थ यह हुआ कि मार्क्सवादी चिन्तन एवं दर्शन के किसी भी अध्ययन के लिए हमें वर्ग की मार्क्सवादी धारणा को समझना अत्यंत आवश्यक है। मार्क्स ने अपनी सम्पूर्ण कृतियों में सामाजिक वर्ग की अवधारणा प्रयुक्त की है लेकिन इसकी व्याख्या पूर्ण रूप से कहीं नहीं की है। मार्क्स ने वर्ग सरंचना की जो भी महत्वपूर्ण एवं विशद व्याख्या की है वह उसकी प्रसिद्ध कृति, *कैपिटल* (1894) के तीसरे भाग में है। 'सामाजिक वर्ग' के शीर्षक के अन्तर्गत मार्क्स ने आय के तीन स्त्रोतो से सम्बन्धित तीन विभिन्न वर्गों को अलग अलग किया तथा परिभाषित किया है। ये वर्ग हैं (अ) साधारण श्रमशक्ति पर निर्भर रहने वाले श्रमिक जिनकी आजीविका का मुख्य स्त्रोत श्रम है, (ब) पूंजीपति जिनकी आय का मुख्य स्त्रोत अतिरिक्त मूल्य अथवा उत्पादन से होने वाला लाभ है, तथा (स) भूमिपति जिनकी आय का मुख्य स्त्रोत भूमि का किराया है। इस प्रकार आधुनिक पूंजीवाद समाज की वर्ग संरचना मे तीन वर्ग मुख्य हैं, वेतनभोगी श्रमिक अथवा कामगार, पूंजीपति तथा भूमिपति।

मौटे तौर पर समाज को दो मुख्य वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। पहला पूंजीपति जिसे 'बुर्जुआ वर्ग' कहा जाता हैं, इनके पास भूमि अथवा पूंजी, फैक्टरी जैसे उत्पादन के साधनों का स्वामित्व होता है। दूसरा सर्वहारा वर्ग, जिसके पास अपनी आजीविका के लिये श्रम के अतिरिक्त कुछ नहीं होता। मार्क्स ने सामाजिक वर्ग की सुनिनिश्चत परिभाषा देने का प्रयास किया है। उनके अनुसार किसी भी सामाजिक वर्ग का उत्पादन की प्रक्रिया में एक निश्चित स्थान होता है।

सोचिए और करिए 1

क्या भारतीय समाज को, मार्क्सवादी वर्ग की अवधारणा के संदर्भ में, वर्गों में बांटा जा सकता है ? यदि हां, तो इन वर्गों का वर्णन कीजिय। यदि नहीं जो बताएये भारतीय समाज को इस तरह क्यों वर्गीकृत नहीं किया जा सकता।

3.2.1 वर्ग निर्धारण के प्रमुख आधार

वर्ग और वर्ग संरचना की विशद् विवेचना से पूर्व हमें यह जान लेना चाहिये कि वर्ग कैसे बनते हैं तथा इनके निर्धारण के प्रमुख आधार क्या हैं। सभी मानव समूह वर्ग नहीं कहे

जा सकते हैं। इसलिए आइये हमसब इस बात की चर्चा करें कि मार्क्सवादी सन्दर्भ में किन मानवीय समूहों को वर्ग कहा जा सकता है और किस समूह को वर्ग नहीं कहा जा सकता। किसी भी सामाजिक वर्ग के निर्धारण में दो प्रमुख आधार होते हैं – (i) वस्तुपरक आधार (ii) स्वचेतना परक आधार। वर्ग को समझने के लिए आइये अब हम इन आधारों की व्याख्या करें।

(i) वस्तुपरक (objective) आधारः उत्पादन के साधनों के साथ जब व्यक्तियों के समान सम्बन्ध होते हैं तो ऐसे समूह को वर्ग कहा जाता है। इसे समझने के लिये आइये हम एक उदाहरण लें, जैसे कि कृषि व्यवस्था में सभी खेतिहर मज़दूरों के भूमि तथा भूतिपतियों से एक जैसे सम्बन्ध होते हैं। उसी तरह से भूमिपतियों के भूमि तथा खेतिहर मज़दूरों से एक समान सम्बन्ध होते हैं। इस प्रकार इस व्याख्या में दो वर्ग हैं, एक और श्रमिक वर्ग और दूसरी ओर भूमिपति वर्ग। लेकिन मार्क्सवादी सन्दर्भ में वर्ग निर्धारण के लिए ये सम्बन्ध पर्याप्त नहीं हैं। इस सन्दर्भ में मार्क्स का एक कथन बहुत प्रसिद्ध है कि वर्ग अपने आप में वर्ग होना ही पर्याप्त नहीं हैं, अपितु उस एक सचेत वर्ग होना चाहिए। इससे क्या अभिप्राय हैं ? मार्क्स के अनुसार किसी सामाजिक वर्ग के वस्तुपरक आधार ही उसके अपने आप में वर्ग होने का निर्धारण करते हैं। वर्ग का अपने आप में वर्ग होने को किसी भी सामाजिक वर्ग का वस्तुपरक आधार माना जाता है। परन्तु मार्क्स ने वर्ग की परिभाषा करते समय केवल वस्तुपरक आधारों को ही वर्ग का पूर्ण आधार नहीं माना अपितु उन्होंने वर्ग के दूसरे प्रमुख आधार अर्थात् स्वचेतनापरक आधार को भी समान रूप से महत्व दिया।

(ii) स्वचेतनापरक (Subjective) आधारः किसी भी समाज में अनेक समूह होते हैं, यदि इन समूहों को हम पहले आधार पर ही वर्ग माने लें तो ऐसे वर्ग वर्ग न होकर केवल संवर्ग (catagory) होंगे। अतः वर्ग निर्धारण में स्वचेतनापरक आधार अत्यधिक महत्वपूर्ण है। इस प्रकार किसी भी वर्ग में सदस्यों के उत्पादन साधनों से न केवल एक से सम्बन्ध होते हैं, अपितु उनमें इस बात की जागरूकता या वर्ग चेतना भी पाई जाती है कि वे एक ही वर्ग के सदस्य हैं।

वर्ग के बारे में यह एक सी चेतना, कि वे एक ही वर्ग के सदस्य हैं, किसी भी वर्ग के सदस्यों को सामाजिक क्रिया हेतु संगठित करने का आधार बन जाती है। अपने वर्ग हित के लिये संगठित प्रयास करने की यह वर्ग चेतना मार्क्स के शब्दों में सही वर्ग चेतना है। इसी को मार्क्स ने सचेत वर्ग (class for itself) माना है।

इस प्रकार किसी भी समाज में इन दो आधारों के द्वारा वर्ग और वर्ग संरचना निर्धारित होती है। अभी तक पढ़ी इस इकाई की पाठ्य सामग्री को आत्मसात कर पाने हेतु बोध प्रश्न 1 पूरा करें।

बोध प्रश्न 1

i) सामाजिक वर्ग को दो पंक्तियों में परिभाषित कीजिये।

....

....

....

....

ii) वर्ग निर्धारण के कौन से दो आधार हैं ? तीन पंक्तियों में बताइए।

....

....

....

....

3.2.2 इतिहास में समाजों का वर्गीकरण एवं वर्गों का उदय

मार्क्स ने मानव इतिहास को अर्थिक अवस्थाओं अथवा उत्पादन प्रणाली के आधार पर विभिन्न अवस्थाओं में बाँटा। इन्हीं आधारों पर उसने एशियाटिक, प्राचीन, सामन्तवादी तथा पूंजीवादी उत्पादन के चार प्रमुख तरीकें बताये। मार्क्स के अनुसार सामाजिक विकास की उत्कृष्ट अवस्था साम्यवाद होगी। आइये हम मानव इतिहास की इन विभिन्न अवस्थाओं अथवा समाज की इन विभिन्न ऐतिहासिक अवस्थाओं का अध्ययन करें। इन्हें आदिम–साम्यवादी, दास अवस्था, सामन्तवादी अवस्था, पूंजीवादी अवस्था कहा गया है। इस उपभाग में हमनें, वर्ग के संदर्भ में, पहली तीन अवस्थाओं की चर्चा की है।

(i) आदिम साम्यवादी अवस्था मनुष्य के समाज के इतिहास में सबसे पहली अवस्था थी और मनुष्य के संगठन का सबसे सरलतम एवं निम्नतम स्वरूप था। यह अवस्था हज़ारों वर्षों तक चलती रही। मनुष्य काठ के डण्डों तथा पत्थरों जैसे आदिम तरीकों को अपनाकर शिकार करता था अथवा जंगली भोजन एकत्रित करके जीवनयापन करता था। समय के साथ साथ धीरे धीरे मनुष्य ने आदिम औज़ारों को सुधारा और उसने आग जलाना सीखा, कषि एवं पशुपालन करना सीखा। इस अवस्था में उत्पादन की तकनीक अथवा जानकारी बहुत निम्न स्तरीय थी अर्थात् दूसरे शब्दों में उत्पादन की शक्तियां निम्न स्तरीय थी। उत्पादन के संबंध उत्पादन के साधनों के संयुक्त स्वामित्व पर आधारित थे। अतः ये सम्बन्ध परस्पर सहायता एवं सहयोग पर निर्भर थे। इन सम्बन्धों की प्रकृति परस्पर सहयोग की इसलिये भी थी, कि उस समय प्रकृति के प्रकोपों और भीषण शक्तियों से मनुष्य सामूहिक रूप से मिलकर ही निपट सकता था। क्योंकि उसके औज़ार, उसकी तकनीकी जानकारी बहुत निम्न स्तरीय थी।

इस अवस्था में एक दूसरे का शोषण न होने के दो कारण थे। एक तो **उत्पादन के साधन** अर्थात् उपयोग में लाए जाने वाले औज़ार साधारण किस्म के होते थे, जिन्हें कोई भी बना सकता था जैसे कि भाला, लाठी, धनुष एवं तीर, आदि। इसीलिए किसी व्यक्ति अथवा समूह का औज़ारों पर एकाधिकार नहीं होता था। दूसरा उत्पादन भी निम्न स्तर का अथवा बहुत कम होता था। लोग केवल जीवन निर्वाह कर पाने में ही समर्थ थे। सभी के काम करने के बावजूद उत्पादन केवल इतना ही होता था कि सब का जीवन निर्वाह हो सके। अतः यह एक ऐसी अवस्था थी जिसमें कोई किसी का कोई मालिक अथवा सेवक नहीं था। सभी व्यक्ति एक समान थे।

धीरे धीरे समय के साथ साथ मनुष्य ने अपने औज़ारों और उत्पादन तकनीक को बेहतर बनाना शुरू किया तथा इसके साथ साथ आवश्यकता से अतिरिक्त उत्पादन होने लगा। इस अतिरिक्त उत्पादन के कारण कुछ लोगों के पास निजी सम्पत्ति संचित होने लगी और आदिम समानता का स्थान समाज में सामाजिक असमानता ने ले लिया। इस अवस्था में पहली बार दास तथा मालिकों के रूप में परस्पर विरोधी वर्ग अस्तित्व में आये।

इससे हमको यह पता चलता है कि किस प्रकार धीरे–धीरे उत्पादन की शक्तियों के विकास के फलस्वरूप आदिम साम्यवादी अवस्था का स्थान दास अवस्था ने ले लिया। यह कहा जा सकता है कि आदिम साम्यवादी अवस्था में वर्ग नहीं थे तथा वर्ग बनने के साथ साथ दूसरी अवस्था आ गई जिसे दास अवस्था कहा गया।

(ii) दास अवस्था में आदिम औज़ारों को परिष्कृत किया गया। पत्थर और लकड़ी के औज़ारों का स्थान काँसे तथा लोहे के औज़ारों ने ले लिया। इसी अवस्था में वृहत् स्तरीय कृषि, पशुपालन, खान उद्योग और हस्तकला जैसी विधाओं का विकास हुआ। उत्पादन की इस तकनीकी जानकारी अथवा उत्पादन की इन शक्तियों के विकास के कारण उत्पादन के सम्बन्धों में परिवर्तन आये। ये सम्बन्ध इस बात पर आधारित थे कि मालिकों का गुलामों, उनके द्वारा उत्पादित वस्तुओं और उत्पादन के साधनों पर पूर्ण स्वामित्व था। मालिक गुलामों को उत्पादन का सिर्फ इतना ही हिस्सा देते थे, जिससे कि उनकी न्यूनतम आवश्यकतों पूरी हो सकें और वे भूख से न मर जायें।

इस प्रकार मानव इतिहास में प्रथम बार मनुष्य के द्वारा शोषण का इतिहास प्रारम्भ हुआ और इसी के साथ वर्ग संघर्ष का इतिहास भी अस्तित्व में आया। समय के साथ साथ उत्पादन की शक्तियों का विकास निरंतर जारी रहा, जिसके फलस्वरूप उत्पादन बढ़ने की प्रक्रिया में दास प्रथा एक बाधा प्रतीत होने लगी। उत्पादन की नई शक्ति उच्च उत्पादन के उद्देश्य से प्रेरित थी तथा इसके लिए उत्पादन के उपकरणों का और बेहतर होना भी जरूरी था। परन्तु गुलामों की इस नई प्रक्रिया में कोई रूचि नहीं थी, क्योंकि इस सबसे उनकी स्थिति में कोई सुधार नहीं होने वाला था। समय के साथ साथ मालिक वर्ग और दास वर्ग में वर्ग संघर्ष चरम सीमा तक पहुंच गया, जिसके फलस्वरूप दास क्रांतियाँ हुई। पड़ौसी जनजातियों के आक्रमण के साथ साथ इन क्रांतियों के फलस्वरूप दास प्रथा की जड़ें हिल गई और एक नई अवस्था का प्रादुर्भाव हुआ, जिसे मार्क्स ने सामंतवादी (देखिए बाक्स 3.1) अवस्था कहा।

बॉक्स 3.1 सामंतवादी व्यवस्था

सामंतवाद शब्द को ''फीफ'' (fief) की संस्था से लिया गया है। फीफ जागीर को कहते हैं, जो कि भूमि सम्पत्ति का एक टुकड़ा होता थी। यूरोपीयन इतिहास के मध्य युग में शासकों ने इस प्रथा को शुरू किया था। इसके अंतर्गत शासक अपने अधीनस्थ समूहों से सैन्य सुविधाएं लेकर, इसके बदले में उन्हें भूमि देता था। यह सम्बन्ध सम्पत्ति के अथवा फीफ या जागीर के हक के रूप में अभिव्यक्त होता था। इस सम्बन्ध को कानून की मान्यता मिली हुई थी। शासक अपने अधीनस्थों के लिये न्यायालय लगाते थे। जहां वे झगड़ों का निपटान करते थे तथा कानून एवं प्रथाओं का उल्लंघन करने वाले को दण्ड देते थे। यही न्यायालय एक प्रशासनिक निकाय भी था जो कि कर लगाता था तथा सैन्य बल का भी गठन करता था। भूमिपति कृषक वर्ग पर नियंत्रण रखते थे। बारहवीं शताब्दी तक भूमि के किरायेदार किसानों (खातेदार) तथा अन्य कृषकों पर भूमिपतियों का नियंत्रण अत्यधिक बढ़ गया था।

(iii) सामंतवादी अवस्था में उत्पादन की शक्तियों का विकास जारी रहा। मनुष्य ने इस अवस्था में मानव श्रम के अतिरिक्त, ऊर्जा अर्थात् अजैवकीय शक्ति के स्त्रोत प्रयोग में लाने शुरू कर दिए जिसमें जल तथा वायु प्रमुख थे। कारीगरी का विकास हुआ, नये औज़ार और मशीनों का आविष्कार हुआ और पुराने औज़ारों को परिष्कृत किया गया।

इस अवस्था में निपुण कारीगरों ने उत्पादकता में महत्वपूर्ण वृद्धि की। उत्पादन की शक्तियों के विकास के कारण उत्पादन के सामंतवादी सम्बन्धों की स्थापना हुई। ये सामंतवादी सम्बन्ध भूपतियों और भूमिहीन किसानों के मध्य स्थापित हुये। इन सम्बन्धों में महत्वपूर्ण बात यह थी कि भूमिहीन कृषकों पर भूपति सामंतो का पूर्ण प्रभुत्व था और ये सामंत इन कृषकों का शोषण करते थे। तथापि दास प्रथा की तुलना में ये सम्बन्ध अधिक प्रगतिशील थे, क्योंकि इनके अन्तर्गत दासों की तुलना में श्रमिकों की स्थिति बेहतर थी और श्रमिक कुछ तक अपने श्रम में रूचि लेने लगे थे। इसके साथ साथ इस अवस्था में कृषक तथा कारीगर कुछ लघुस्तरीय उत्पादन के औज़ारों और कृषि की छोटी जोत के मालिक भी हो सकते थे।

समय के साथ साथ नये आविष्कार हुये, जिससे उत्पादन की शक्ति में परिवर्तन आये, जनसंख्या में वृद्धि हुई, जिसके कारण उपभोग की वस्तुओं की मांग बढ़ी और उपनिवेशीकरण का युग प्रारम्भ हुआ, जिसके कारण नये बाज़ार अस्तित्व में आये। नई प्रौद्योगिकी तथा आवश्यकताओं के कारण वृहत् स्तरीय उत्पादन की आवश्यकता महसूस की जाने लगी। इन सब बातों ने असंगठित श्रमिकों को उत्पादन प्रक्रिया में एक स्थान पर लाकर खड़ा किया, जो कि फैक्ट्री अथवा असंगठित उद्योग कहलाये। इसका परिणाम यह हुआ कि पहले से ही तीक्ष्ण हुए वर्ग संघर्षों ने भूमिपतियों के विरूद्ध कृषक क्रांति का रूप ले लिया। उत्पादन की नई व्यवस्था में मुक्त श्रमिक की आवश्यकता थी जबकि कृषक का श्रम केवल जमीन से जुड़ा हुआ था। अतः उत्पादन की नई शक्तियों ने उत्पादन के सम्बन्धों को भी परिवर्तित किया, जिसके फलस्वरूप सामंतवादी उत्पादन के तरीके का पूंजीवादी उत्पादन के तरीके में परिवर्तन हुआ। अगले उपभाग (3.2.3) में हमने पूंजीवादी समाज में वर्ग संघर्ष पर चर्चा की है। परंतु अगले उपभाग को पढ़ने से पहले आइए बोध प्रश्न 2 पूरा करें।

बोध प्रश्न 2

i) मार्क्स द्वारा दी गई, समाज की पांच अवस्थाएं बताइए।

....

....

....

....

ii) निम्नलिखित कथनों में से प्रत्येक के सामने सही अथवा गलत पर निशान लगाइए।

अ) वेतन व्यवस्थाओं के साथ वर्ग संघर्ष अथवा विरोध का इतिहास शुरू हुआ। सही / ग़लत

ब) आदिम साम्यवादी अवस्था में सम्पत्ति का निजी स्वामित्व नहीं था। सही / ग़लत

3.2.3 पूँजीवाद के अन्तर्गत वर्ग संघर्ष की तीव्रता

पूँजीवाद पर आधारित व्यवस्था में उत्पादन शक्तियों का प्रमुख लक्षण वृहत् स्तरीय उत्पादन है। इस व्यवस्था के अस्तित्व में आते ही हस्तकला क्षेत्रों तथा लघु कृषि का

स्थान विशालकाय फैक्ट्रियों और उद्योगों ने ले लिया। मार्क्स और एंजल्स (1848) ने *मैनिफैस्टों ऑफ द कम्युनिस्ट पार्टी* में यह बतलाया है कि पूंजीवादी उत्पादन शक्तियों ने किस तरह नए आविष्कारों से बड़ी बड़ी आबादियों का नक्शा ही बदल दिया। पिछली दो शताब्दियों में पूंजीवादी व्यवस्था में उत्पादन शक्तियों में इतना अधिक परिवर्तन आया जितना कि इससे पूर्व के सम्पूर्ण मानव इतिहास में नहीं आया था।

उत्पादन की शक्तियों की इस तीव्र प्रगति में पूंजीवादी उत्पादन के सम्बन्धों का भी योगदान था। पूंजीवादी उत्पादन के सम्बन्ध उत्पादन के साधनों पर पूंजीपतियों के स्वामित्व पर आधारित थे। उत्पादक अथवा औद्योगिक श्रमिक कानूनी रूप से स्वतंत्र है अर्थात् है किसी ज़मीन अथवा किसी विशेष फैक्ट्री से जुड़ा हुआ नहीं है। इस व्यवस्था में श्रमिक की स्वतंत्रता इस अर्थ में है कि वह अपनी मनमर्ज़ी से किसी भी पूंजीपति के पास कार्य करने जा सकता हैं, परन्तु वह बुर्जुआ वर्ग से पूर्ण रूप से मुक्त नहीं है। उत्पादन के साधनों का स्वामित्व न होने के कारण उसे अपनी श्रम शक्ति बेचने के लिये बाध्य होना पड़ता है और उसे किसी न किसी पूंजीपति के पास कार्य करना पड़ता है। इस प्रकार वह इस शोषण के चक्र से नहीं बच सकता।

पहले की अपेक्षा स्वतंत्र औद्योगिक श्रमिक शोषण के कारण अपने वर्ग हितों के प्रति अधिक सचेत रहते हैं और अपने आपको कामगार आंदोलन के रूप में संगठित करते हैं। यह आंदोलन बुर्जुआ वर्ग के विरूद्ध संघर्ष को तेज़ किया। इसमें सर्वप्रथम बेहतर वेतन और काम करने की दशाओं के लिये सौदेबाज़ी होती है। परन्तु अन्त में इसका उद्देश्य पूंजीवादी व्यवस्था का तख़्ता पलटना होता है। मार्क्स के अनुसार पूंजीवादी व्यवस्था असमानता, शोषण तथा वर्ग संघर्ष के सबसे उग्रवादी स्वरूप का प्रतीक है। ये कारण मिलकर समाजवादी क्रांति का मार्ग प्रशस्त करते हैं, जिसके फलस्वरूप एक नयी अवस्था का प्रादुर्भाव होता है, जिसे साम्यवाद कहा गया है। (बॉक्स 3.2 देखें)।

बॉक्स 3.2 साम्यवाद

''साम्यवाद'' शब्द का उद्भव 1830 ईस्वी के मध्य में हुआ था। इस समय पैरिस में गुप्त क्रांतिकारी पार्टियों ने ''साम्यवाद'' शब्द को अपनाया था। कामगार वर्ग ने पूंजीवादी समाज में पूंजीपतियों के विरूद्ध यह राजनैतिक आंदोलन चलाया था। साम्यवादी समाज का अभिप्राय उस समाज से था जो कामगार वर्ग के संघर्ष के परिणामस्वरूप सामने आने वाला था। उन्नीसवीं शताब्दी के पिछले भाग में कामगार वर्ग के आंदोलन की चर्चा में साम्यवाद और समाजवाद का एक ही अर्थ समझा जाने लगा। मार्क्स तथा एंजल्स ने भी अपने लेखों में प्रायः इन अवधारणाओं का इसी तरह प्रयोग किया।

तीसरे अंतर्राष्ट्रीय साम्यवादी सम्मेलन, 1917 के समय से पूंजीवाद को उखाड़ फेकने वाली क्रांति के रूप में साम्यवाद की अवधारणा का प्रयोग किया जाने लगा। लेकिन अब समाजवाद का अभिप्राय शांतिपूर्वक व वैधानिक गतिविधि द्वारा लाए गए दीर्घकालीन परिवर्तनों से समझा जाता है जबकि साम्यवाद का अर्थ हिंसात्मक क्रांति द्वारा लाए गए परिवर्तनों से है।

मार्क्स ने साम्यवाद को समाज का एक विशिष्ट रूप माना है। *इकॉनॉमिक एण्ड फिलॉसॉफिकल मैनुस्क्रिप्ट्स* (1844) में मार्क्स ने लिखा है कि साम्यवाद के अंतर्गत निजी सम्पत्ति, स्व का अलगाव (self alienation) तथा मनुष्य का मनुष्य द्वारा शोषण पूर्ण रूप से समाप्त हो जाएगा।

3.3 वर्ग संघर्ष एवं क्रांति

अभी तक हमने यह अध्ययन किया है कि उत्पादन प्रणाली अथवा आर्थिक संरचना समाज की आधारशिला है। अधोसंरचना (infrastucture) में कोई भी परिवर्तन अधिसंरचना (superstructure) में मौलिक परिवर्तन लाता है। जिसके परिणामस्वरूप समाज में परिवर्तन होते हैं। उत्पादन प्रणाली में परिवर्तन मूलतः उत्पादन शक्तियों और उत्पादन सम्बन्धों में परिवर्तन है। आइए, हम वर्ग संघर्ष के सन्दर्भ में उत्पादन प्रणाली में परिवर्तनों पर चर्चा करें। आदिम साम्यवादी अवस्था में अतिरिक्त उत्पादन की संभावनायें नहीं थीं तथा उत्पादन के साधनों में निजी स्वामित्व भी नहीं था। इस कारण उस अवस्था में किसी प्रकार की असमानता अथवा शोषण भी नहीं दिखाई देता। उत्पादन के साधन मानव समुदाय की सामूहिक सम्पत्ति थे तथा कोई वर्ग संघर्ष नहीं थे। उत्पादन शक्तियों में विकास और सुधार के साथ साथ उत्पादकता भी बढ़ी, जिसके फलस्वरूप उत्पादन के साधनों का निजी स्वामित्व संभव हुआ और इन सभी करणों से उत्पादन संबंधों में भी परिवर्तन हुआ। इस मोड़ पर आकर आदिम साम्यवादी अवस्था खत्म हो जाती है और एक नई अवस्था, दास प्रथा, प्रारंभ होती है। इसके साथ प्रारंभ होता है मानवीय इतिहास में असमानता, शोषण और संघर्ष का एक लम्बा दौर।

दास प्रथा में मालिकों और गुलामों के मध्य वर्ग संघर्ष के कारण उत्पादन के तरीकों में परिवर्तन आया, जिसकी वजह से सामंतवादी अवस्था का प्रादुर्भाव हुआ। मार्क्स ने कहा कि आज तक के समाज का इतिहास वर्ग संघर्ष का इतिहास है। इसका अर्थ है कि समाज का सम्पूर्ण इतिहास वर्ग संघर्ष की विभिन्न अवस्थाओं और कालों का साक्षी रहा है। वर्ग संघर्ष का इतिहास दास प्रथा से प्रारंभ होकर सामंतवादी अवस्था में जारी रहता है। पहले, वर्ग संघर्ष दास तथा मालिक वर्गों के मध्य शुरू हुआ। सामंतवादी अवस्था में वर्ग संघर्ष भूपति सामंतों और भूमिहीन कृषि मज़दूरों के मध्य हुआ। उत्पादन प्रणाली में परिवर्तन तथा वर्ग संघर्ष के कारण समाज में इस सामंतवादी व्यवस्था का स्थान पूंजीवादी व्यवस्था ने ले लिया।

पूंजीवादी व्यवस्था में वर्ग संघर्ष चरमोत्कर्ष पर पहुंच जाता हैं, जिससे कि कामगार वर्ग का आंदोलन एक ठोस शक्ल लेकर क्रियान्वित होता है। पूंजीपतियों के वर्ग और औद्योगिक श्रमिकों के मध्य वर्ग संघर्ष के कारण पूंजीवादी व्यवस्था का स्थान समाजवाद ले लेता हैं। इस प्रचंड आमूल परिवर्तन को मार्क्स ने क्रांति कहा है। अगले भाग में हमने क्रांति की अवधारणा पर विस्तार से चर्चा की है। अगला भाग पढ़ने से पहले सोचिए और करिए 2 पूरा करें।

सोचिए और करिए 2

क्या भारतीय इतिहास वर्ग संघर्ष के कुछ उदाहरण प्रस्तुत करता है ? यदि हां तो, कम से कम एक उदाहरण को विस्तार से बतलाइये। यदि नहीं तो, भारतीय इतिहास में वर्ग संघर्ष के न होने के कारण बताइये।

मार्क्स के अनुसार पूंजीवाद व्यवस्था में वर्ग संघर्ष के कारण क्रांति होगी, जिसके फलस्वरूप समाजवाद आयेगा। यहां यह प्रश्न उठता है कि पूंजीवादी समाज में वर्ग संघर्ष का कारण क्या हैं ? वस्तुतः यहां उत्पादन की शक्तियों और संबंधों में परस्पर विरोध देखने में आता है। बुर्जुआ वर्ग निरंतर उत्पादन के सशक्त साधन सृजित करता है। परन्तु उत्पादन की शक्तियों में इन परिवर्तनों से उत्पादन संबंध अप्रभावित रह जाते

हैं। अर्थात् उत्पादन के साधनों में स्वामित्व और आय की वितरण संरचना में उसी दर से परिवर्तन नहीं आते। पूंजीवादी उत्पादन के तरीके वृहत् स्तरीय उत्पादन करने में सक्षम होते हैं। इस वृहत् स्तरीय उत्पादन और आर्थिक समृद्धि में अत्यधिक वृद्धि के बावजूद पूंजीवादी व्यवस्था में अधिकांश जनसंख्या निर्धनता और मुसीबतों का शिकार रहती हैं। दूसरी ओर कुछ परिवारों के पास कल्पना से परे इतनी अधिक सम्पदा का संचय होता है कि ये विषमतायें स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगती हैं। निर्धनता और मुसीबतों के विशाल समुद्र में ऐसा लगता हैं, जैसे समृद्धि के छोटे छोटे द्वीप उठ खड़े हुये हों। इस भीषण विषमता का उत्तरदायित्व असमान तथा शोषण उत्पादक संबंधों पर होता है, जो कि उत्पादन और उत्पादन से उत्पन्न समृद्धि का असमान तरीकों से वितरण करते हैं। मार्क्स के अनुसार इस विरोध के कारण एक क्रांतिकारी संकट उत्पन्न होता है। मार्क्स की भविष्यवाणी थी कि इस स्थिति में सर्वहारा वर्ग जो कि आबादी का एक बड़ा हिस्सा होता है, वह एक संघर्षकारी वर्ग बन जायेगा और एक ऐसी सामाजिक शक्ति के रूप में उभरेगा जो कि इन उत्पादन संबंधों को परिवर्तित करना चाहेगा।

मार्क्स से सर्वहारा को वर्ग संघर्ष में एक उभरते हुए वर्ग के रूप में माना है। उन्होंने यह दावे से कहा है कि एक वर्ग का दूसरे वर्ग पर विजित होना समाज की प्रगति का आधार रहा है। मार्क्स के जीवन का उद्देश्य ही सर्वहारा वर्ग को प्रभावी बनाना था। एक तरह से वह वर्ग संघर्ष के अभियान का नायक बन गये थे। पूंजीपति व्यवस्था को समाप्त करने के लिए मार्क्स ने समाज व इतिहास को नियमित करने के तरीकों पर विशेष ज्ञान अर्जित किया। अपनी मुख्य कृति, *दास कैपिटल* (*कैपिटल*, 1861—1879) में मार्क्स ने वर्ग संघर्ष के वाद विवादों पर ध्यान नहीं दिया है। उन्होंने इस वाद विवाद को व्यर्थ माना है। तात्कालिक चर्चा में मार्क्स ने भावुकतावाद, मानवतावाद तथा आदर्शवाद आदि दार्शनिक विचारधाराओं से कोई लगाव नहीं दर्शाया है। उनकी मान्यता थी कि वर्ग संघर्ष हर स्तर पर होता है अतः उन्होंने ऐसी राजनैतिक पार्टी के गठन की आवश्यकता पर ज़ोर दिया जो प्रभावी हो तथा विजित वर्ग बन सके।

यहां यह स्पष्ट कर देना चाहिए कि वर्ग संघर्ष का विचार सबसे पहले मार्क्स ने नहीं दिया था। सेंट सिमों ने भी मानव इतिहास को सामाजिक वर्गों के मध्य हो रहे संघर्ष के रूप में देखा था। 1790 के दशक में एक फ्रांसीसी राजनैतिक आंदोलनकर्त्ता बाबेफ़ ने सर्वहारा वर्ग की अधिनायकता के बारे में लिखा है। बाद में बाबेफ़ के शिष्य ब्लॉकी तथा एक जर्मन दर्ज़ी वाइटलिंग ने बाबेफ़ के विचारों को आगे विकसित किया। फ्रांसीसी समाजवादियों ने औद्योगिक राज्यों में कामगारों की भावी प्रस्थिति तथा उनके महत्व की विवेचना की थी। वास्तव में, अठारहवीं शताब्दी में बहुत से चिंतकों ने ऐसी धारणाएं विकसित की थीं। मार्क्स ने सभी के विचारों की बारीकी से जांच पड़ताल की तथा एक नया सामाजिक विश्लेषण प्रस्तुत किया। वर्ग संघर्ष पर मार्क्स का विश्लेषण साधारण मूल सिद्धातों के विस्तृत विवरण पर आधारित है। मार्क्स के अनुसार सर्वहारा वर्ग सामाजिक संस्तरण में सबसे निम्न वर्ग है। इसके नीचे अन्य कोई वर्ग नहीं है। वस्तुतः सर्वहारा वर्ग के उद्धार में ही मानव जाति का उद्धार है। मार्क्स बुर्जुआ वर्ग द्वारा संघर्ष करने के अधिकार को भी मान्यता देते हैं। लेकिन सर्वहारा वर्ग के लिए यह संघर्ष जीतना उसके जीवित रहने के लिए अर्थात् अस्तित्व के लिए अनिवार्य है।

मार्क्स के अनुसार यह परिवर्तन क्रांतिकारी परिवर्तन होगा और सर्वहारा वर्ग की यह क्रांति पिछली हुई सभी क्रांतियों से भिन्न होगी। विगत क्रांतियां अल्प संख्यक लोगों द्वारा अल्प संख्यक लोगों के लाभ के लिये की गई थीं, परन्तु सर्वहारा वर्ग की क्रांति

बहुसंख्यक समुदाय द्वारा की जायेगी और इसका लाभ सभी को मिलेगा। इस प्रकार सर्वहारा क्रांति के फलस्वरूप पूंजीवादी समाज का तख्ता पलट जायेगा और एक वर्गविहीन समाज की स्थापना होगी, जिसमें सम्पत्ति का निजी स्वामित्व नहीं होगा और न ही किसी प्रकार की असमानता होगी अथवा शोषण होगा। सर्वहारा वर्ग का सामूहिक रूप से स्वामित्व होगा तथा उत्पादन समाज के सभी सदस्यों में समान रूप से वितरित होगा। इस अवस्था को सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व (dictatorship of proletariat) कहा गया। यह अवस्था कालांतर में राज्यविहीन समाज में परिणित हो जायेगी, जिसके अंतर्गत अंततः साम्यवादी अवस्था स्थापित होगी। इसके साथ साथ सभी प्रकार के सामाजिक वर्ग और वर्ग संघर्ष भी समाप्त हो जायेंगे। इस अवस्था में सर्वहारा वर्ग का अलगाव (alienation) भी समाप्त हो जाएगा। अलगाव की अवधारणा मार्क्सवाद की प्रमुख धारा समझी जाती है। बोध प्रश्न 3 के बाद अगले भाग (3.4) में अलगाव के बारे में तथा मार्क्स के वर्ग विश्लेषण में इसकी महत्ता के बारे में भी कुछ चर्चा की जाएगी।

बोध प्रश्न 3

i) साम्यवाद की प्रमुख विशेषताओं को तीन पंक्तियों में लिखिये।

....

....

....

....

ii) निम्नलिखित कथनों के सामने सही अथवा गलत पर निशान लगाइए।

अ) सम्पत्ति का निजी स्वामित्व साम्यवाद में समाप्त नहीं होगा। सही / ग़लत

ब) साम्यवाद में राज्यविहीन, वर्गविहीन समाज होगा। सही / ग़लत

3.4 मार्क्स की अलगाव की अवधारणा

अलगाव (alienation) का शाब्दिक अर्थ है ''अलग होना''। साहित्य में यह शब्द अक्सर प्रयुक्त हुआ है लेकिन मार्क्स ने इसे समाजशास्त्रीय अर्थ दिया है। मार्क्स का अलगाव की अवधारणा से अभिप्राय ऐसे समाज की संरचना से है जिससे उत्पादन के साधनों से उत्पादक वंचित रहता है तथा जिसमें ''निर्जीव श्रम'' (पूंजी) का ''जीवंत श्रम'' (श्रमिक) पर प्रभुत्व होता है। आइए हम जूते बनाने के कारखाने के एक मोची का उदाहरण लें। यह मोची जूते तो बनाता है लेकिन उनका अपने लिए इस्तेमाल नहीं कर सकता। उसकी बनाई हुई रचना (जूता) एक ऐसी वस्तु बन जाती है जो उससे अलग हो जाती है। यह वस्तु एक ऐसा रूप ले लेती है जो उसके बनाने वाले से पृथक हो जाती है। वह अपनी काम करने तथा सजृन करने की अन्तःप्रेरणा को संतुष्ट करने के लिए जूते नहीं बनाता अपितु अपनी जीविका कमाने के लिए ऐसा करता है। कारीगर के लिए वस्तु का पृथक रूप धारण कर लेना और भी गहरा हो जाता है जब कारखाने में उत्पादन प्रक्रिया अलग अलग हिस्सों में बांट दी जाती है तथा कारीगर के हिस्से में एक पूरे काम

(जूता बनाना) को छोटा सा हिस्सा ही आता है। इस तरह वह जूता बनाने के किसी एक भाग पर काम करने की गतिविधि (जैसे सिलाई अथवा कटाई आदि) में लगा रहता है। उसका काम मशीन जैसा हो जाता है तथा वह सोच समझ से काम करने की क्षमता को खो देता है।

मार्क्स ने 'फटिशिज़्म ऑफ कमोडिटीज एण्ड मनी' शीर्षक के अंतर्गत *कैपीटल* (1861–1879) में इस अवधारणा को विस्तृत एवं व्यवस्थित व्याख्या दी है। परन्तु इस अवधारणा की नीतिशास्त्रीय बुनियाद 1844 में रखी गई इस समय मार्क्स ने ''राज्य'' एवं ''धन'' की पूर्ण रूप से आलोचना की, इन्हें अस्वीकृत कर दिया तथा सम्पूर्ण समाज के उद्धार का ''ऐतिहासिक मिशन'' सर्वहारा वर्ग को सौपा। मार्क्सवादी अर्थ में अलगाव एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसके माध्यम से (अथवा जिस स्थिति में) एक व्यक्ति, एक समूह, एक संस्था, अथवा एक समाज निम्न के प्रति अलगावित (alienated) हो जाता है (अथवा अलगावित बना रहता है):

अ) अपने कामों के परिणामों अथवा उत्पादों के प्रति (तथा क्रियाओं के प्रति), और/ या

ब) उस प्राकृतिक वातावरण के प्रति जिसमें वह रहता है, और/ या

स) अन्य व्यक्तियों के प्रति, तथा इसके अतिरिक्त (अ) से (स) तक किसी एक अथवा सभी के प्रति

द) स्वंय के प्रति (स्वयं की ऐतिहासिक रूप से सषजित मानवीय संभावनाओं के प्रति)।

अलगाव सदैव आत्म अलगाव होता है, अर्थात् अपने ही कामों द्वारा अपने से अलग हो जाना। गैजो पेत्रोविक (1983:10) के कथनानुसार, ''अलगाव के अनेक स्वरूपों में से आत्म अलगाव एक स्वरूप मात्र नहीं है, अपितु अलगाव की यह आधारभूत संरचना तथा सार है। यह मात्र एक विवरणात्मक अवधारणा नहीं है, बल्कि विश्व में क्रांतिकारी परिवर्तन लाने के लिये इसमें एक आह्वान है, एक अपील भी है।''

मार्क्स का उद्देश्य अलगाव की मात्र आलोचना करना नहीं था। उसका उद्देश्य एक आमूल क्रांति के लिये मार्ग प्रशस्त करना तथा एक ऐसे साम्यवाद की स्थापना करना था जिसे ''व्यक्ति का अपनी स्वंय की ओर वापस आने की प्रक्रिया का पुर्नेकीकरण, या आत्म अलगाव पर विजय'' के रूप में समझा जाये। मार्क्स के अनुसार केवल निजी सम्पत्ति करने से आर्थिक एवं सामाजिक जीवन का अलगाव दूर नहीं हो सकता है। निजी सम्पत्ति को राज्य सम्पत्ति में परिवर्तित करने से श्रमिक अथवा उत्पादक की स्थिति नहीं बदलती। पूंजीवादी उत्पादन में अलगाव के कुछ तत्वों की जड़ उत्पादन के साधनों की प्रकृति में तथा इससे संबंधित सामाजिक श्रम के विभाजन में होती है। इसी वजह से उत्पादन के प्रबंधन में परिवर्तन मात्र से अलगाव दूर नहीं होता है।

सामाजिक जीवन के चिर सत्य से परे, समाज का एक दूसरे पर निर्भर एवं संघर्षरत क्षेत्रों (अर्थव्यवस्था, राजनीति, विधि, कला, नैतिकता, धर्म, आदि) में विभाजित होना तथा समाज में आर्थिक क्षेत्र का अन्य सभी क्षेत्रों पर प्रभुत्व होना, मार्क्स के अनुसार, आत्म अलगावित समाज की विशेषता है। यही कारण है कि विभिन्न मानवीय गतिविधियों का एक दूसरे से अलगाव समाप्त किये बिना समाज में अलगाव दूर करना असंभव है।

मार्क्सवादी अर्थ में, अर्थव्यवस्था के पुर्नगठन द्वारा अलगाव समाप्त नहीं किया जा सकता, चाहे यह परिवर्तन कितने ही क्रांतिकारी तरीके से लाया गया हो। व्यक्ति द्वारा

अलगाव को झेलना तथा समाज में अलगाव होना, दोनों एक ही प्रक्रिया से संबंधित हैं। अतः दोनों में से केवल एक के अलगाव की समाप्ति से न तो दूसरे में अलगाव समाप्त किया जा सकता है और न इसे कम किया जा सकता है।

अलगाव की अवधारणा मार्क्सवादी चिंतन में विश्लेषण की कुंजी है। मार्क्स के अनुसार अभी तक व्यक्ति सदैव स्व अलगावित था। उत्पादन के बुर्जुआ समाज के भीतर विकसित हो रही उत्पादक शक्तियां ऐसी भौतिक दशाएं उत्पन्न करती है जो इस विरोध एवं अलगाव का समाधान कर देंगी। अतः एक तरह से यह सामाजिक संरचना मानवीय समाज के अंतिम अध्याय की ''पूर्व ऐतिहासिक'' अवस्था है। इस संरचना में बदलाव अलगाव को दूर करके ही बदलाव लाया जा सकता है। अलगाव की अवधारणा को भली भाँति समझने के लिए सोचिए और करिए 3 पूरा करें।

सोचिए और करिए 3

क्या आपकी मातृ भाषा में अलगाव के लिये कोई शब्द है ? यदि हां, तो इस शब्द को बताइये व अपने रोजमर्रा के जीवन से उदाहरण देकर इसे समझाइये।

3.5 सारांश

इस इकाई में हमने मानव समाज के ऐतिहासिक विकास के संदर्भ में कार्ल मार्क्स द्वारा दी गई वर्ग एवं संघर्ष की अवधारणाओं का अध्ययन किया है। मार्क्स ने वर्ग को समाज के सदस्यों की वर्ग चेतना और उनके उत्पादन के साधनों के संबंध के संदर्भ में परिभाषित किया है। मार्क्स के शब्दों में ''आज तक के समाज का इतिहास वर्ग संघर्ष का इतिहास है।'' इसका तात्पर्य यह है कि दास प्रथा के समय से ही सामाजिक असमानता और शोषण का युग प्रारंभ हो गया था। इस अवस्था में शोषण और असमानता बने रहते हैं। ऐसा समाज परस्पर विरोधी दो वर्गों में बंटा रहता है, जिसमें एक बुर्जुआ वर्ग और दूसरा सर्वहारा वर्ग कहलाता है। वर्ग संघर्ष और उत्पादन के तरीकों में परिवर्तन के कारण समाज के इतिहास में विभिन्न अवस्थायें परिवर्तन के दौर से गुजरी हैं, जिसमें एक दास प्रथा से सामंतवादी प्रथा और सामंतवादी से पूंजीवादी व्यवस्था तक परिवर्तन हुआ है। मार्क्स के अनुसार अंतिम सामाजिक क्रांति पूंजीवादी व्यवस्था को समाजवादी अवस्था में परिवर्तित कर देगी, जिसमें न तो सामाजिक असमानता होगी और न वर्ग तथा वर्ग संघर्ष होंगे। वर्गविहीन तथा राज्यविहीन समाज की संरचना होगी जिसमें अलगाव की स्थिति भी दूर हो जाएगी।

3.6 संदर्भ

कोज़र, लेविस एत्र. (1971), *मास्टर्स ऑफ सोशियॉलॉजिकल थॉटः आइडियाज़ इन हिस्टॉरिकल एण्ड सोशल कॉनटैक्स्ट*, न्यूयार्क : हरकोर्ट ब्रेस जोवैनोविश्व

इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय पाठ्यसामग्री (2005). *समाजशास्त्रीय सिद्धान्त* (ESO 13), नई दिल्लीः इग्नू

3.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

i) वे लोग, जिनके उत्पादन के साधनों के समान संबंध होते हैं अर्थात् अपने समान हितों के प्रति जिनमें समान जागरूकता पाई जाती है। वे एक वर्ग का निर्माण करते हैं।

ii) वर्ग निर्धारण के दो आधार हैः

अ) वस्तुपरक आधार तथा

ब) स्वचेतनापरक आधार।

बोध प्रश्न 2

i) 1) आदिम साम्यवादी अवस्था 2) दास अवस्था

3) सामन्तवादी अवस्था 4) पूंजीवादी अवस्था

5) साम्यवाद

ii) अ) सही

ब) सही

बोध प्रश्न 3

i) इसमें एक ऐसा वर्ग विहीन समाज होगा जिसमें उत्पादन के साधनों का निजी स्वामित्व नहीं होगा तथा राज्यविहीन समाज होगा।

ii) अ) गलत

ब) सही